सिद्धयोग

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	भूता एव स तत्त्वतः	....	१
२.	योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी का काय-निर्वाण (विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३.	परम सती सुकला	सुश्री उमा शर्मा	८
४.	भारतीय संस्कृति और योग	श्री हरिभक्त चैतन्य	१३
५.	योगाचार्य महर्षि घेरण्ड और चण्डकापालिक	श्री यशोवर्द्धन	१८
६.	भारतीय दर्शन में योग का महत्व	श्री गौरीशंकर द्विवेदी	२१
७.	ऋग्वेदीय अक्षसूक्त (पद्य)	श्री वेदव्रत शास्त्री	२४
८.	योगी श्री श्यामाचरण लाहरी	डा० विष्णुदत्त शर्मा	२६
९.	योग के विघ्न एवं उनके उपाय	श्री गिरीशचन्द्र शर्मा	३५
१०.	ब्रह्मचारी गोपालानन्द के ध्यानानुभव	श्री सिद्धगुफा सवाई	३६
११.	मैं कौन हूँ	श्री परिपूर्णानन्द शर्मा	४५
१२.	जिस पर कृपादृष्टि हो जाती	श्री रामनमोहन सिंह	४६
१३.	धारणा का स्थान और महत्व	श्री नारायणदास जी	५०
१४.	संकल्प-शक्ति एवं योग	श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री	५३
१५.	मेरे बचपन में (पद्य)	श्री राजेन्द्र तिवारी	६०
१६.	महायोग का स्वरूप, साधना और महत्व	श्री सत्यप्रसाद शास्त्री	६२
१७.	अद्भुत बालक पर अद्भुत कृपा	श्री अशोक कुमार	६८
१८.	अनाहत नाद	श्री मानिक चन्द	७३
१९.	श्रीमद्भागवत में योग-प्रकरण	श्री डा० विजयसिंह	७९
२०.	विनय-शतक (कविता)	श्री सुखीराम जलानिया	८३
२१.	मानव जीवन का परम उद्देश्य	श्री ऋषिराम शर्मा	८५
२२.	कबीर की दृष्टि में सद्गुरु	श्री केशवदेव उपाध्याय	९१
२३.	बावरे मन (कविता)	श्री 'दिव्य'	९४
२४.	नव वर्ष का शुभारम्भ	संयुक्त सम्पादक	९५
२५.	उपालम्भ (कविता)	श्री सत्येन्द्र पाठक	टाइटिल ३

संयुक्त सम्पादक
दिव्य
फोन ६३१६८

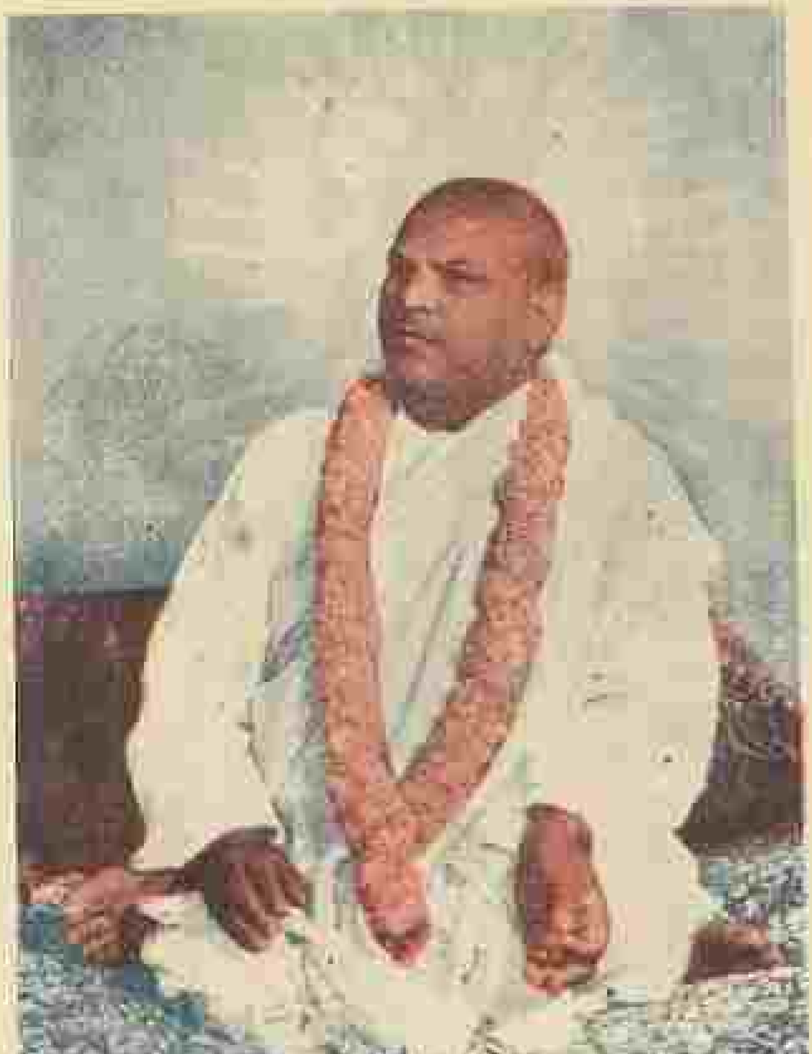

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्ध योग

वर्ष १
अङ्क १

अप्रैल
१९७६

ध्यातं ध्यातं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
गत्वा शून्योऽपि न निवर्तते, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थम् [illegible] योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

भूता एव स तत्पतिः

स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः ।
सर्वं जगद्यस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः ॥
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्ति सः ।
अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः ॥
श्मशानं चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनाम् ।
भूतयः कथिता भूतिस्तां बिभर्ति स भूतिभृत् ॥

वे समस्त जगत के आदि हैं, सुतरां उनके वंश का वृत्तान्त कौन जान सकता है ? समस्त जगत उनका स्वरूप है, इसीलिये वे दिगम्बर हैं। वे त्रिगुणात्मक शूल धारण करते हैं, इसीलिये उन्हें 'शूली' कहते हैं। भूत सर्वथा संसार से बद्ध नहीं हैं, बल्कि पूर्णतः मुक्त हैं, इसीलिए वे मुक्त भूतगणों के अधिपति हैं। यह संसार ही श्मशान क्षेत्र है, वे प्राणियों के प्रति कृपावशतः इस श्मशान में वास करते हैं। उनकी विभूति ही सबको प्रकृत-विभूति (ऐश्वर्य) प्रदान करती है, इसीलिये वे इस विभूति को अपने शरीर पर धारण करते हैं।

श्री रामलालप्रभवे नमः

हमारा विशेष लेख :—

= योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी =

का

— काय-निर्माण —

[योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

श्री पातञ्जल योग दर्शन में योगी की शक्ति का वर्णन करते हुए श्री पतञ्जलि जी ने निम्नांकित सूत्र का उल्लेख किया है :—

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।

(समाधिपाद, सूत्र ४०)

अर्थात् एकाग्र चित्त वाले योगी की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि उसका चित्त परमाणु से लेकर आकाश पर्यन्त अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस सूत्र पर व्यास-भाष्य की पंक्तियें इस प्रकार पढ़िये।

"सूक्ष्मे निविशमानस्य परमाण्वन्तं स्थितिपदं लभत इति, स्थूले निविशमानस्य परममहत्त्वान्तं स्थितिपदं चित्तस्य, एवं तामुभयीं कोटिमनुधावतो योऽस्याप्रतिघातः स परो वशीकारः, तद्वशीकारात्परिपूर्णं योगिनश्चित्तं न पुनरभ्यासकृतं परिकर्मापेक्षत इति ॥४०॥

अर्थात् जिस समय योगी अपने संयम के आधार पर सूक्ष्म तत्वों को जानने की इच्छा करता है, उस समय परमाणु पर्यन्त योगी का चित्त संयम से पहुंच जाता है और जिस समय स्थूल तत्व में संयम करता है तो आकाश आदि पर जय करके मूल प्रकृति पर्यन्त वशीकार प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से योगी का चित्त बिना किसी रुकावट के संकल्प मात्र से सूक्ष्म और महान से महान में स्थिति को पा जाता है तो उसकी वशीकार संज्ञा हो जाती है। उसको फिर अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रहती। संकल्प मात्र से जहां भी संयम करता है, वहीं ही उसका अधिकार हो जाया करता है। इस प्रकार संयम के आधार पर वह योगी पंच महाभूतों के महान्, सूक्ष्म आदि रूपों पर अधिकार पा जाया करते हैं। वह पूज्यपाद योगी अपने शरीर में जैसा भी परिणामान्तर करना चाहते हैं, वैसा ही हुआ करता है। हमारे साथ इस लेख का विषय

है—"योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी का काय-निर्माण।" "श्री प्रभुजी के चरणारविन्द के विषय में 'साधारण सिद्ध-योगी' कहना उचित नहीं है। उनके चरणारविन्दानुरागी साधुओं ने पूरा अन्वेषण कर इस बात को भली प्रकार से जान लिया है कि श्री प्रभुजी तत्वविजयी अनादिकाल से चली आती महाविभूतियों में से एक हैं। उन्होंने अपने में संस्कार रखने वाले अनेकों प्राणियों के संस्कार निवृत्ति के लिए कितने ही स्थानों पर निर्माण-तन धारण किये। सर्वसाधारण के ज्ञान के लिए श्री प्रभु जी के कुछ चरित्र इस लेख में हम यहाँ उदाहरण रूप से दिखला रहे हैं।

एक बार श्री प्रभु जी के सवाई ग्राम में निवास काल की एक घटना है जो वहाँ के निवासियों ने अपनी आँखों देखी थी। श्री प्रभुजी सवाई ग्राम में निवास कर रहे थे तब श्री प्रभु जी सवाई आश्रम में रहते हुए बच्चों को नित्य खिलाया करते थे। एक दिन अकस्मात् एक घटना घटी जिससे यह पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाता है कि श्री प्रभु जी एक साथ तीन जगह निर्माणित शरीर से प्रकट हुए।

गढ़मुक्तेश्वर में काय-निर्माण

एक दिन सवाई ग्राम के बहुत से व्यक्ति गंगास्नानार्थ गढ़मुक्तेश्वर गये। पर्व का मौका था। गंगास्नानार्थ जाने वाले लोगों ने श्री प्रभुजी से यह प्रार्थना की, कि प्रभो! आप हमारे साथ गंगा स्नान के लिए चलिए किन्तु श्री प्रभुजी ने कुछ बालकों आदि से कहा कि भाई हम जाकर क्या करेंगे? तुम लोग स्नान कर आओ। मन से हम हर समय तुम्हारे साथ हैं। गाँव के लोग इस बात को मान गये और गंगा-स्नान के लिए गढ़मुक्तेश्वर को चले गये। वहाँ पहुँचने पर जब वे लोग स्नान करने के लिए घाट पर गये तो उन लोगोंने देखा कि श्री प्रभुजी उनके साथ आ रहे हैं। लोगों ने कहा कि प्रभो! आप आ गये। श्री प्रभुजी ने कहा कि तुम सब लोगों की भावना थी, सो हम आ गये। लोगों ने कहा कि प्रभो! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो आप आ गये। हम लोगों की तीव्र भावना थी कि इस परम पवित्र पर्व पर आप हम लोगों के साथ होते। आपके बिना हम तो अपने स्नान को बिल्कुल बेकार समझते थे। इस प्रकार का वार्तालाप करते हुए श्री प्रभुजी वहाँ कुछ दूर तक उनके साथ चले और उसके बाद उन लोगों से कहा कि भाई! तुम लोग चलो, अब हम आ जायेंगे।

अलीगढ़ में भक्त-रक्षा हित काय-निर्माण

जिस दिन गढ़मुक्तेश्वर में यह घटना घटी, ठीक उसी दिन अलीगढ़ में इसी प्रकार की घटना घटी। ठाकुर कर्णसिंह श्री प्रभुजी के अनन्य भक्तों में से एक थे। वह उन्हीं के चिंतन में प्रतिक्षण लीन रहा करते थे। वे अकस्मात् चलते-चलते चिंतनशील होते थे

उनका पैर रपटा और गहरे गड्ढे में पड़ने की स्थिति पैदा हो गयी। डा० कर्णसिंह ने देखा कि श्री प्रभुजी पीछे खड़े हैं और उनके कन्धों को पकड़ कर कह रहे हैं कि अरे! कर्णसिंह होश सम्हाल कर चल नीचे कितना गहरा खड्डा है। अभी तू इसमें गिर जाता तो प्राण रक्षा कठिन हो जाती। यह कहकर वे कुछ दूर तक उनके साथ चले। उसके बाद अन्तर्धान हो गये। उधर सवाई सिद्धगुफा पर वैसे के वैसे बने ही रहे। उधर से मल्लुकेश्वर वाले लोग और कर्णसिंह सवाई पहुँचे तो वहाँ पर श्री प्रभुजी पहले से ही विराजमान थे ही। इन लोगों ने आकर के कहा कि प्रभो! इतनी जल्दी आकर के आप हम लोगों से पहले कैसे आ गये? तो श्री प्रभुजी ने कहा कि हम तो यहाँ से गये ही नहीं, तुम्हें कोई दूसरा महात्मा मिल गया होगा। सभी को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी लोग समझ गये कि श्री प्रभुजी ने यह कार्य हम सबके हितार्थ, नव शरीर धारण करके किया।

मद्रास प्रान्त के प्रमुख शहर मछलीपट्टम में काय-निर्माण

मछलीपट्टम शहर से थोड़ी दूर पर गोदावरी नदी के उत्तरी तट पर सघन छायायुक्त एक वृक्ष खड़ा था। उसके नीचे रमणीक स्थान में भिन्न-भिन्न स्थानों से साधु लोग आ करके अपना अभ्यास किया करते थे। उन सब में एक साधक सिद्धयोग का अभ्यासी था, वह सीमिये की एक डेली पर सलाई से रेखा खींच कर काट-काटकर अपना अभ्यास बढ़ा रहे थे, उनका अभ्यास बहुत ही शनैः-शनैः बढ़ रहा था। परम करुणार्णव श्री प्रभु जी वहाँ पर काय-निर्माण से प्रकट हुए और उस साधक को आश्वासन देते हुये कहा कि लाओ तुम्हारे इस अभ्यास को हम बढ़ा दें। यह कहकर श्री प्रभुजी ने एक सीमिये की डेली उठाई और उसे खाने को दे दिया। श्री प्रभुजी के भावुकरूप को देखकर उसने उन पर विश्वास किया और डेली खाली, वह उसे पच भी गई। उस सिद्धयोगी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि यह कौनसे महापुरुष हैं और कहाँ से आते हैं? श्री प्रभुजी ने उसे आज्ञा दी कि हम सप्ताह में एक बार यहीं वट-वृक्ष के नीचे मिल जाया करेंगे और तुम्हारे सिद्धयोग का अभ्यास अवश्य-अवश्य पूर्ण करा देंगे। अपने कथनानुसार श्री प्रभु जी प्रति सप्ताह गोदावरी तट पर उनको सिद्धयोग का अभ्यास कराते रहे। श्री प्रभुजी के दर्शन से उसको तरह-तरह के चमत्कार होते रहे और समाधि का अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

एक रोज उसने श्री प्रभु जी से हठ करके प्रार्थनापूर्वक पूछा कि प्रभो! आपकी कृपा से मुझे अद्भुत सफलता प्राप्त होती जा रही है। कृपा करके आप अपना परिचय कराइये कि

आप कौन हैं और कहाँ से आया करते हैं? श्री प्रभुजी ने उनको बार-बार समझाया। भाई, हमारे परिचय से तुम्हें क्या लाभ होगा? हम साधु हैं, रमते राम हैं, आज यहाँ हैं तो कल वहाँ हैं। यह हठ तुम हमसे मत करो, किन्तु फिर भी वह साधक बराबर हठ करता ही रहा। उसके हठ के परिणामस्वरूप श्री प्रभु जी ने अपना परिचय दे ही दिया और कहा हमारा नाम "राम योगी" है। जन्मभूमि पंजाब है। पंजाब में हमारे शिष्य बहुत से हैं, जिनमें से मुलखराज, गोपालानन्द, चन्द्रमोहन, नृसिंहादि प्रमुख हैं। इन सबको छोड़ करके हम चले आये हैं। वे लोग हमारे सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं। अब आज से छः महीने बाद रायमहेन्द्रगढ़ शहर में योग प्रचार करता हुआ ओंकारगढ़ी नृसिंह मूर्ति तुम्हें मिलेगा, वह हमारा बच्चा है, शेष काम तुम्हें वह करायेगा। श्री प्रभुजी के कथनानुसार ठीक छः महीने बाद रायमहेन्द्रगढ़ में योग प्रचार करते हुये श्री नृसिंहमूर्ति जी उसे मिले। उसने श्री प्रभुजी की सारी बातें बतायीं। अपने अनुकूल शिक्षा पाकर वह सिद्धयोग का अभ्यासी बन गया। यह था श्री प्रभुजी का काय-निर्माण। एक जगह नहीं, उन्होंने अनेकों जगह निर्माण-तनों से अपने भक्तों की रक्षा की।

पंडित यशवन्त को काय-निर्माण से दर्शन

अमृतसर में पंडित यशवन्त शर्मा दुर्गयाना मन्दिर के सामने लोहे के फाटक से बाहर भाई-मालमन्ती की धर्मशाला के सामने धूप और अगरबत्ती की दुकान करते हैं। ये बाल्यावस्था में कुछ समय के लिए आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की सेवा में रहे थे। आयु बहुत छोटी थी। प्रभुजी से कई बार प्रार्थना की कि प्रभु जी, आप हमारा घर देखने के लिए चलें। श्री प्रभु जी साधारण भाव से कहते रहे, बेटा शान्त रख, किसी दिन चलेंगे। एक दिन इस बालक ने बहुत हठ किया तो प्रभु जी ने कहा-अच्छा तू चल, मकान खोल हम आते हैं। बालक यशवन्त ने प्रभुजी की आज्ञा को मानकर तांगा मँगवा दिया और स्वयं दस कदम आगे चल कर अपने मकान को खोला तो दरवाजे के खोलते ही देखा कि वहाँ पर एक पलंग पर प्रभुजी पहले से ही विराजमान हैं। इस दृश्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गया और हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना की कि प्रभु जी! आप मुझसे भी पहले यहाँ कैसे पहुँच गये और मकान का ताला बन्द होने पर अन्दर प्रवेश कैसे किया? ताला तो मैंने ही खोला है। श्री प्रभु जी मुस्कराने लगे। बेटा! हम तुम्हारे साथ ही तो आये हैं। इतनी देर में देखा कि जो तांगा यशवन्त ने प्रभु जी के लिये किया था, उसमें बैठकर आ रहे हैं। यह और भी बड़े भारी आश्चर्य की बात थी। यशवन्त हैरान रह गया। उधर देखा श्री प्रभुजी तांगे में बैठे हुए हैं और इधर देखा पलंग पर भी बैठे हुए हैं।

किन्तु कौनसे स्वरूपको सत्य माने। श्री प्रभुजी के स्वप्नमें ही प्रार्थना की कि प्रभुजी! नाले में भी आप है और मकान में पलंग पर भी आप बैठे हैं। आपके किस स्वरूप को सत्य मानें। प्रभुजी हँस पड़े और हँसकर कहने लगे— बेटा! हम तो तुम्हारे साथ ही हैं, और कहीं थोड़े ही हैं। यह कहकर बालक यथावत् को लेकर अपने स्थान पर चले आये।

श्री नारायणदास जी को खेचरी का उपदेश

पं० नारायणदास जी अमृतसर के रहने वाले थे। उनको श्री प्रभुजी ने खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने की आज्ञा दी थी। वह शनैः-शनैः दोहन, चालन, छेदन के द्वारा खेचरी का अभ्यास कर रहे थे। किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी वे इस मुद्रा की साधना में सफलता नहीं प्राप्त कर सके। पं० नारायणदास स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। स्वाध्यायशील व्यक्ति के स्वाध्याय का यह प्रभाव होता है कि ऋषि, मुनि, देवता और सिद्ध लोग एवं परमतत्त्व श्री गुरुदेव उसको दर्शन दिया करते हैं और अपनी शक्ति से उसकी मनोकामना पूर्ण किया करते हैं। घटना इसी प्रकार से हुई, नारायणदास खेचरी के लिए निरन्तर परेशान थे और मन में बहुत अधिक निराशा थी। वह सोचते थे, यदि खेचरत्व प्राप्त नहीं होता तो मनुष्य शरीर को धारण करना व्यर्थ है। इस घोर निराशा के समय क्या देखते हैं कि श्री प्रभुजी सामने से आते हैं और कहते हैं बेटा! नारायणदास, तुम निराश क्यों हो रहे हो। लो तुम्हें हम एक मन्त्र बतलाते हैं, इसके जापने से तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। श्री प्रभुजी ने उसके कान में हुंकार के मन्त्र जपाया और स्वयं उसकी जीभ को पकड़ कर आगे को खींच दिया और मुद्रा लगाने की विधि को समझा दिया। उसी दिन से पं० नारायणदास की समाधि लगने लगी। वे इस मुद्रा को पाकर कृतार्थ हो गये। पं० नारायणदास को खेचरी मुद्रा का श्री प्रभुजी ने निर्माण-काय से उपदेश दिया था।

गुरु के बटाले में काय-निर्माण

अमृतसर में अमरनाथ नाम के एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे बड़े अच्छे कर्मकाण्डी थे, स्वाध्यायशील एवं सदाचारी थे। किन्तु श्री प्रभुजी की लीला चरित्रों में वे विश्वास नहीं करते थे। वह समझते थे, यह सब बनावट है। यह अपने आपको सिद्ध योगीराज साबित कर रहे हैं। यथार्थतः ऐसा नहीं है। यही विचार इसके मन में घूमते रहते थे। एक रोज अकस्मात् एक घटना घटी। वह अमृतसर से ८ मील के दूरी पर गुरु का बटाला नामक एक गाँव है, किसी कार्यवश वहाँ गये हुए थे। घूमते-घूमते एक बगीचे में पहुँचे, वहाँ जाकर देखा कि एक सुहावने वृक्ष के नीचे

आसन लगाकर प्रभुजी वहाँ बैठे हुए थे। मालूम पड़ता था वह कहीं से चलकर आये हुए हैं और आगे कहीं जाना चाहते हैं। पं० जगन्नाथ ने प्रभुजी को पहचान लिया और पहचान कर कहा सुनाइये महाराज ! आप यहाँ अकेले कैसे बैठे हुए हैं। आपके साथ हजारों स्त्री-पुरुषों की भीड़ हमेशा रहा करती है। आज आपको अकेले देख कर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यह कैसे ? प्रभु जी ने उत्तर दिया—भाई ! हम सब अमेठी की ओर आये हैं एवं अब यहाँ से हम नेपाल धाम को लौट रहे हैं। इस प्रकार से वहाँ पर कई घण्टे तक जगन्नाथ बात करते रहे। उसके बाद प्रभुजी से विदाई लेकर वे अमृतसर चले आये। जिस समय जगन्नाथ अमृतसर आने लगे तो पं० जगन्नाथ से कहा-कि भाई ! फलां-फलां कोठी पर जाकर हमारे बच्चों से कहना कि वे चिंता न करें। हम दुबारा मिलेंगे। पं० जगन्नाथ ने स्वीकार किया और अमृतसर आकर वे कोठी में सभी सत्संगी भाइयों को सन्देश देने के लिए आया वहाँ जाकर देखा कि सभी सत्संगी जोर से संकीर्तन कर रहे हैं। और देहावसान के समय कई घण्टे पहले जो शरीर छोड़ दिया था। उसको सम्हाले हुए हैं। पं० जगन्नाथ को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और सभी से कहा कि भाई ! मैं तो इनको साधारण मनुष्य ही समझता था किन्तु बड़े ही आश्चर्य की बात है। यहाँ पर यह शरीर मृत अवस्था में पड़ा पड़ा है और मैं अभी-अभी आधा घण्टा पहले गुरु के बटाले में से लगभग ४ घण्टे तक मिला रहा, बातचीत की, विश्राम किया। अन्त में प्रभुजी से विदाई लेकर आया तो यहाँ पर यह दृश्य देखा। इसमें कुछ भी शंका की बात नहीं कि महाराज जी, परिपूर्णतम् योगिराज हैं। उनके लिए मरना, जीना, शरीर का छोड़ना और न छोड़ना दोनों ही समान हैं।

गुरु के बटाले का यह कार्य प्रभुजी का निर्माण काय का कार्य था। कहाँ तक लिखें आजकल भी उनकी इस प्रकार की हजारों घटनाएँ घटित होती रहती हैं। वह अपने बालकों के लिए हजारों शरीर को धारण करके विविध प्रकार के कार्य किया करते हैं। अभी कुछ वर्ष पहले हमने कितने ही शिष्यों के साथ नेपाल धाम की यात्रा की। हम लोग पशुपति नाथ के पास वाली धर्मशाला के ऊपर वाले कमरे में ठहरे थे। वहाँ पर अकस्मात् एक साधु आया। और उसने बातचीत करते हुए हमें बतलाया कि उसको अभी कुछ दिन पहले दरभंगा के जंगलों में प्रभुजी के दर्शन प्राप्त हुए हैं और उसने उन्हीं से योग-दीक्षा प्राप्त की है। और कितने ही दिन तक चरण सेवा में रहता रहा। उसने बतलाया कि प्रभुजी ने आज्ञा दी है कि मैं यहाँ आकर आपके दर्शन प्राप्त करूँ और प्रसाद लूँ। अन्ततः वह विभूति का प्रसाद लेकर वहाँ से तत्काल चला

गया। प्रसाद लेकर चले जानेके बाद पुनः उस साधु के दर्शन नहीं हुए।

इस छोटे से लेख में अनेक रूप धारणकारी आदि प्रभु जी की अनन्त लीलाओं का कहाँतक वर्णन करूँ। अपने बालकों के हितार्थ वे कब-कब और कितने शरीर धारण करते हैं, यह सब मापन से बाहर है।

श्री रामनवमी प्रभु जी के प्रकट होने का दिन है। रामनवमी के अवसर पर ही 'सिद्ध-योग' का नये वर्षका विशेषांक निकलता रहता है। हम प्रति वर्ष चाहते रहते हैं कि इस अङ्क में उनके लीला चरित्रों का ही अधिक वर्णन आये। इसी भावना को विचार में रखते हुए हमने प्रभु जी के काय-निर्माण को लक्ष्य बना कर यह कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, जिनको पढ़कर के प्रत्येक साधक भली प्रकार से यह समझ सकेगा कि उस परात्पर प्रभु जी के कितने अद्-भुत कार्य हैं और अपने बालकों के हितार्थ क्या नहीं करते हैं? अर्थात् सभी कुछ किया करते हैं। प्रभु जी के चरणों में बार-बार आशीर्वाद है—

सर्वे भवन्तु सुखिन,
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

परम सती सुकला

[सुश्री उमा शर्मा]

'सिद्धयोग' में गत वर्षों के विभिन्न अङ्कों में मैंने अनेक महान सतियों, परम योगिनियों के सतीत्व और उनके योगिक ऐश्वर्यों का उल्लेख करने का प्रयास किया है। इस लेखमें भी मैं एक परम सती के सतीत्व का उल्लेख कर रही हूँ। लोकोक्ति है कि—

"स्वयं तीर्णः परांतारयति।"

अर्थात् "जो स्वयं तैरना जानता है वही दूसरों को भी तारता है।" इसी प्रकार जो स्वयं पवित्र हो वही दूसरों को भी पवित्र कर सकता है। और जो पवित्र कर सकता है वही तीर्थ है। इस दृष्टि से पतिव्रता भी एक पावन तीर्थ है, क्योंकि वह अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से अपने माता, पिता तथा पति-तीनों का उद्धार करती है। सती सुकला भी ऐसी ही तीर्थस्वरूपा देवी हुई है।

प्राचीन काल की बात है, काशीपुरी में कृकल नामक एक धर्मात्मा वैश्य रहते थे। इनकी पत्नी का नाम सुकला था। परम सती सुकला "यथा नाम तथा गुणः।" की सुन्दरी होने

के साथ ही सद्गुणवती भी थी। पति-प्रेम ही उसका जीवन था। उसके लिए तीर्थ, व्रत, देवता और ईश्वर—सब कुछ पति ही थे। पति की सेवा से क्षणभर भी अलग होना नहीं चाहती थी। एक दिन कृकल ने अनुकूल साथ मिल जानेके कारण तीर्थयात्रा के लिए तैयारी की। सुकला ने कहा—प्राणेश्वर! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, अतः आपके चरणों के साथ रहकर पुण्य लेने का मेरा भी अधिकार है। आप अकेले तीर्थ यात्रा करने जा रहे हैं, पर मेरे तीर्थ तो आप ही हैं।

मैं यहाँ यह भी स्पष्ट कर दूँ कि पतिव्रता स्त्रीके पतिही किस प्रकार से तीर्थ-स्वरूप होते हैं। पढ़िये मिर्जापुरी भाषा में एक लोकगीत—

घर ही में मन्दिर बनउब,
          पर तीर्थ हम घूमत न जइब।
सासू की गौरा ससुर जी को शंकर,
          पति जी को विष्णु बनउब॥
जिठनी को दुर्गा ननद को तुलसा,
          देवरानी को देवी बनउब।
अपने देवर को पुजारी बनाउब,
          मन्दिर के साथ सजउब॥
बच्चा कन्त के बालक बनउब,
          गोदिया में लें-लें खिलउब।
पर उपकारक जीवन बनउब,
          संतन की सें-सें मिलउब॥

इस गीत से यह स्पष्ट होरहा है कि पति और पति से युक्त को ही किस प्रकार से पतिव्रता स्त्री अपना तीर्थ बना लेती है।

अतः परम सती सुकला भी अपने पतिदेव से प्रार्थना करती है। प्रभो! आपसे अलग होने पर मेरा तीर्थ-सेवन छूट जायगा, अतः मुझे भी साथ ले लीजिये। साधु श्रेष्ठ! स्वामी के दाहिने चरण को प्रयाग और बायें को पुष्कर समझिये। जो स्त्री ऐसा मानती है और इसी प्रकार की भावनानुसार पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे तीर्थों में स्नान करने का ही पुण्य प्राप्त होता है। पति समस्त तीर्थों के समान है। पति सम्पूर्ण धर्मों का स्वरूप है। यज्ञ की दीक्षा लेने वाले पुरुष को यज्ञों के अनुष्ठान से जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पति की पूजा करके प्राप्त कर लेती है।

कृकल ने उस समय आश्वासन देकर पत्नी को शान्त कर दिया, परन्तु पीछे यह सोचकर कि यह सुकुमारी है, इसे यात्रा में अधिक कष्ट होगा, उसने घर ही छोड़ दिया। अतः रात को जब वह सो रही थी, वे चुपचाप घर से निकल गये।

प्रातः होने पर जब सुकला उठी, तब पति को न पाकर घबरा गई। वह फूट-फूट कर रोने लगी। धीरे-धीरे जब उसका मन कुछ स्वस्थ हुआ तब उसने यह निश्चय किया कि—"जब तक मेरे स्वामी लौटकर नहीं

जायेंगे, मैं भूमि पर चटाई बिछाकर ही सोऊँगी। घी, तेल और दूध दही नहीं खाऊँगी। गुड़, पान, नमक भी छोड़ दूँगी। एक वक्त भोजन करूँगी अथवा उपवास करके ही रह जाऊँगी।" भगवान पतञ्जलि देव जी ने अपने योग दर्शन में तप का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि—"द्वन्द्व सहनं तपः" इस सूत्र का अर्थ है सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के जोड़े को सहन करना। यही तप परम सती सुकला ने अपने पति के चले जाने पर प्रारम्भ कर दिया। उसने एक वेणी धारण करना प्रारम्भ कर दिया। एक वस्त्र से ही शरीर को ढाँकने लगी। उसका वेश मलिन हो गया। वह लम्बी साँसें खींचती और पति के लिये व्याकुल रहती।

सुकला की सखियों से उसकी यह दशा देखी न गई क्योंकि सखियों ने उसे समझाया और उसे इस कठोर तपस्या से विरत करना चाहा। परन्तु उस पतिपरायणा देवी ने सती धर्म की महिमा का वर्णन करके उन सबके हृदय में पति भक्ति का अंकुर जमा दिया। सुकला के मन में केवल पति का ही ध्यान और पति की ही कामना थी। उसकी ख्याति देवलोक तक फैल गई। देवराज इन्द्र के मन में उसकी परीक्षा लेने का संकल्प हो गया।

सती के रास्ते में कितने ही अन्तराय आया करते हैं। किन्तु सती किसी प्रकार से उन अंतरायों को काट कर आगे ही बढ़ती गयी। सुकला को भी यही दशा हुई। इन्द्र के मन में सुकला की परीक्षा लेने की भावना उत्पन्न हुई। रति और कामदेव भी उसके सहायक हो गये। इन्द्र ने एक परम सुन्दर बलवान तरुण का रूप धारण किया और सुकला के निवास पर जाकर उसे लुभाने का प्रयत्न आरम्भ किया। इन्द्र कई बार उसके सामने से निकले। हाव-भाव और लावण्य का प्रदर्शन करने लगे किन्तु सुकला ने उनकी ओर दृष्टि-पात तक न किया। उसका मन तो अपने पति में ही एकाग्र था। पूज्य श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से कई बार कहा करते हैं—"मन की एकाग्रता से ही योग की क्रियाएँ प्रारम्भ होती हैं।"

अतः सुकला का मन अपने पति के चरणों में एकाग्र था। जब इन्द्र अपनी कुत्सित चेष्टाओं से उसको आकर्षित करने में सफल नहीं हो सके, तब उन्होंने इस कार्य के लिये एक दूती नियुक्त की। दूती ने सुकला के पास जाकर उसके दुख में सहानुभूति प्रगट की। उसके साथ सौहार्द बढ़ाया और पति की ओर से उसका मन फेरने के लिए तरह-तरह की बातें कहीं किन्तु सुकला पर कोई भी प्रभाव न पड़ा। दूती पराजित होकर लौट आई। तब कामदेव ने सती को धर्म से विचलित करने का बीड़ा उठाया। उसने "क्रीड़ा" और "प्रीति"

इन दोनों कुटिनियों को अपनी सहायता के लिये चुना।

इन्द्र और काम को पाप के पथपर अग्रसर होते देख सत्य और धर्म ने सती की सहायता करने का निश्चय किया। धर्म की प्रेरणा से प्रज्ञा पक्षिणी का रूप धारण करके सुकला के घर गई। वहाँ उसने शुभ शकुन-सूचक मांगलिक शब्द का उच्चारण किया। सुकला ने ब्राह्मण को बुलवाया और उनका आदर करके पूछा—"भगवान्! बताइये इस शकुन का क्या फल है? मेरे पति कबतक आयेंगे? ब्राह्मण ने कहा देवी! यह शकुन तुम्हारे पति के शुभागमन का सूचक है। वे सात दिन के भीतर यहाँ अवश्य आ जायेंगे।" ब्राह्मण का यह मंगलमय वचन सुनकर सुकला को बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर कामदेव की भेजी हुई क्रीड़ा एक सती के रूप में सुकला के घर में उपस्थित हुई। उसने अपने स्वामी के गुणों की प्रशंसा करके कहा—"वे मुझे छोड़कर बाहर चले गये हैं। इससे मैं बहुत दुखी हूँ। सुकला ने उसको भी अपने समान दुखी समझा और उससे घुलमिलकर बातें करने लगी। क्रीड़ा बातों-बातों में बहलाकर सुकला को एक मनोहर वन में ले गई जिसे कामदेव ने प्रगट किया था। क्रीड़ा के मुख से यह जानकर कि यह कामदेव का वन है, सती सुकला ने न वहाँ के फूल सूँघे न ही फल खाये। अन्त में कामदेव की पत्नी रति वहाँ आई और हँसकर सुकला से बोली—भद्रे! 'तुम रति और प्रीति के साथ यहाँ रमण करो।' सुकला ने उत्तर दिया—'जहाँ मेरे स्वामी हैं, वहीं मैं भी हूँ।' मैं सदा पति के साथ रहती हूँ, मेरी रति, मेरी प्रीति सब उन्हीं के चरणों में है। यह शरीर तो निराश्रय है। यह सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गईं और काम के पास जाकर बोलीं—इस नारी को जीतना असम्भव है। इसका पतिप्रेम अविचल है।

इतने पर भी इन्द्र ने अपनी कुचेष्टा नहीं छोड़ी। वे सामने आकर उसे अपने रूप से लुभाने और मिलने की प्रार्थना करने लगे, किन्तु सुकला का हृदय दृढ़ था। उसने साहस-पूर्वक कहा—'धर्म मेरा रक्षक है देखो!' शांति और क्षमा के साथ सत्य मेरे सामने उपस्थित है। इन सबके द्वारा मेरी रक्षा हो रही है। तुम कौन हो? जो मुझे बलपूर्वक प्राप्त करना चाहते हो? स्मरण रखो! मैं नित्य सुरक्षित हूँ। इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह में तत्पर रहती हूँ। साक्षात् शचीपति इन्द्र भी मुझे जीतने की सामर्थ्य नहीं रखते। महा पराक्रमी कामदेव भी आ जायें तो मुझे परवाह नहीं, क्योंकि मैं सदा सतीत्व रूपी कवच से सुरक्षित हूँ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मुझ पर कामदेव के बाण व्यर्थ अवश्य हो जायेंगे। धर्म आदि महाबली मेरे सहायक हैं। वे मुझे इस प्रकार सताने पर तुम्हें ही मार डालेंगे। हटो, भाग जाओ। मेरे सामने खड़े न रहो, यदि खड़े रहोगे तो जलकर खाक हो जाओगे। मेरे स्वामी की अनुपस्थिति में यदि तुम मेरे शरीर

पर दृष्टि डालोगे तो जैसे आग सूखी लकड़ी को जला देती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें भस्म कर डालूँगी। लिखा है—

अहं रक्षापरा नित्यं,
दमशान्तिपरायणा।
न मां जेतुं समर्थोऽत्र,
अपि साक्षाच्छचीपतिः॥
यदि वा मन्मथो ज्ञावि,
समागच्छति वीर्यवान्।
दंशिताहं सदा,
सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥
निरर्थकास्तस्य बाणा,
भविष्यन्ति न संशयः।
त्वामेवं हि हनिष्यन्ति,
धर्माघातास्ते महाबलाः॥
दूरं गच्छ पलायस्व,
नात्र तिष्ठ ममाग्रतः।
वार्यमाणो यदा तिष्ठे-
र्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा विना निरीक्षेत,
मम रूपं यदा भवान्।
यथा दारु दहेद् वह्निस्तथा,
धक्ष्यामि नान्यथा॥

इतना सुनते ही इन्द्र आदि सब डर कर भाग गये। सती सुकला की रक्षा उसके धर्म ने की। तदनन्तर कृकल वैश्य तीर्थयात्रा से अपने घर को लौटे। वे सोचते थे, मैंने अपने पितरों का उद्धार कर दिया। इतने में ही उन्हें एक दिव्य पुरुष दिखाई दिये, जो कृकल के पितरों को बांधकर लाये थे। पिता-पितामहों को बन्धन में देखकर वैश्य को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने दिव्य पुरुष से पूछा—'देव आप कौन हैं? मेरे पितर बन्धन में क्यों हैं? क्या मुझे तीर्थयात्रा का फल नहीं मिला?' दिव्य पुरुष साक्षात् धर्म थे। उन्होंने कहा—'जो पुण्यमयी पतिव्रता पत्नी को अकेले छोड़कर धर्म करने के लिये बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा पुण्य व्यर्थ हो जाता है। साध्वी पत्नि के समान कोई तीर्थ नहीं है, पत्नी के समान कोई सुख नहीं है। तथा संसार से तारने और कल्याण साधन करने के लिए पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं है। जैसा कि—

नास्ति भार्यासमं तीर्थं,
नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं,
तारणाय हिताय च॥

अतः अपनी सती पत्नी को साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थ में श्राद्ध और दान किया है, उसी दोष से तुम्हारे पूर्वज बांधे गये हैं। गृहस्थ आश्रम में पत्नि के बिना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है। अब अपने घर जाकर अपनी पत्नी को सान्त्वना दो। उसी के हाथ से श्राद्ध करो। अपने घर पर ही पुण्य-तीर्थों का स्मरण करके श्रेष्ठ देवताओं का पूजन करो। इससे तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल होगी।

कृकल ने घर आकर वैसा ही किया। पति के आने से पतिव्रता सुकला को अपार आनन्द हुआ। उसके द्वारा किये हुए पूजन और श्राद्ध से तृप्त होकर देवताओं और पितरों ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि ने भी दर्शन और वरदान देकर दोनों दम्पति को कृतार्थ किया। देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की। इस प्रकार सती धर्म के पालन से लोक-परलोक दोनों पर विजय पायी।

भारतीय संस्कृति और योग

[ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्य (जम्मू, काश्मीर)]

['पृथ्वी-मण्डल के हम सभी मानव द्वन्द्वी विचारधारा में भेदभाव त्याग कर चिदाकाश में राजहंसों की पंक्ति बनाकर सामूहिक उड़ान लगावें। ब्रह्मानन्दामृत से भरी झील (हिमालय) मानसरोवर में डुबकी लगाकर तीर्थ-स्नान करें।'

उपर्युक्त भावों को अपने इस लेखमें व्यक्त करते हुए हिमालय की उपत्यकाओं में बैठकर योग का उद्घोष करने वाले तपोनिष्ठ युवायोगी ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त चैतन्यने समस्त मानव जाति को आमन्त्रण दिया है कि जन्म-जन्मांतरों का मन-मैल मिटाने के लिए योगरूपी मानसरोवर में स्नान करके अपने जीवन को सफल कृतार्थ करें। —सं० सम्पादक]

आज बुद्धि युग का बाल, युवा, वृद्ध प्रत्येक नर-नारी विज्ञान विचारधारा से अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के विकास के लिये हार्दिक भाव से प्रयत्नशील दिखाई देता है। भारतीय जनता और विदेशी भावुक लोग भी भारतीय योगी, ऋषि-मुनि, तपस्वी, ज्ञानी प्रभु-प्रेमी भक्तों के गुरु परम्परागत साधनानुभव की खोज में परम श्रद्धा-भाव से अपना अमूल्य जीवन-समय लगा रहे हैं।

भौतिक वेत्ता भी बड़ी दौड़-धूप के बाद आत्मिक सुख शान्ति के लिये भारतीय दर्शन-शास्त्र, वेद-पुराण तथा अनुभविक योग-साधना पर अनुसन्धान व शोध करने लगे हैं।

आज मानव की समस्यायें आवश्यकताओं की अधिकता से जीवन का अमूल्य समय वृथा नष्ट कर रही हैं। सभी प्रकार की सुख-सामग्री आवश्यकता से कई गुना अधिक होने पर भी धनी लोगों को अशान्ति ने अपने जाल में फँसा कर व्याकुल कर रखा है। मानवता-मार्ग खोया जा रहा है।

एक ओर मध्यम वर्ग का मानव अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। सन्मार्ग पर चलते हुए जीवन कैसे बितायें? श्रमजीवी जन-साधारण पर गरीबी ने घेरा डाल रखा है। यह अशान्त-व्याकुल मानव भी चाहे तो परम सुख-शान्ति, बुद्धि की स्थिरता, आत्मोन्नति कर सकता है।

पूर्वाचार्यों के आप्तवाक्यों में उच्चकोटि का ज्ञान भण्डार भरा है। योगी ऋषि मुनियों के अनुशासन में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर आत्म-

सकना है, ब्रह्मानन्द सुखानुभव से तृप्त हो सकती है। सारी समस्यायें सुलझ सकती हैं।

शरीर रूपी रथ को विषयों की सड़कों पर इन्द्रियरूपी घोड़े बड़ी तेजी से दौड़ाते जा रहे हैं। ज्ञान-बुद्धि रूपी सारथी के हाथ से मन रूपी लगाम छूट गई है। आगे झुककर लगाम पकड़ने में असमर्थ है। रथ का सवार (जीव) जीवात्मा बेचैन है कि न जाने कब यह कहीं टकराकर गिर जायेगा, मेरी दशा क्या होगी? हृदय से ईश्वरीय प्रेरणा मिलती है, परन्तु मन ने इन्द्रियों के साथ गठजोड़ कर रखा है। यह ईश्वर की प्रेरणा को पीछे छोड़ इन्द्रियों की प्रेरणा पर चल रहा है।

जब आपत्तिकाल आये तो शान्त-चित्त रहे उच्चकोटि के आचार्यों से विचार लेने चाहिये, उत्तम मार्ग मिल जाता है। मानसिक शान्ति और आत्मानन्द प्राप्त करना मानव-मात्र के लिये नितान्त आवश्यक है।

भारतवर्ष के शान्त गम्भीर सर्वात्मानन्द निमग्न योगी, ऋषि-मुनि, ज्ञानी, प्रभु-प्रेमी महापुरुषों के शिक्षा-दीक्षा सविकल्पोपदेश आज व्याकुल-आकुल मानव के मार्गदर्शक हैं। आज के जिज्ञासु इतने व्याकुल हैं कि वर्षों में होने वाला कार्य रॉकेट के समान दिनों में हो जावे।

आइये! पृथ्वी मण्डल के हम सभी मानव छुकटी विचार-धारा से भेद भाव त्याग कर चिदाकाश में राजहंसों की पंक्ति बनाकर सामूहिक उड़ान भरावें। ब्रह्मानन्दामृत से भरी झील (हिमालय) मानसरोवर में डुबकी लगा कर तीर्थ-स्नान करें। जी भर के शान्ति-ब्रह्मामृत का पान करें। पानी में से दूध और जल की गहराई से मोती ग्रहण करने का कार्य हंस ही करता है। परन्तु मनुष्य सूक्ष्म तत्वकी गहराई से आत्म तत्वको ग्रहण करता है। इसलिए तत्व दृष्टायोगी को भी परमहंस कहते हैं। जन्म जन्मान्तरों के मनोमैल, आत्मामृत की प्यास मानव मिटा सकता है। गुरुजनों के अनुग्रह से इतनी तृप्ति हो जाती है कि सर्वात्मानन्द ही अपनी अनुभूति स्वरूप-स्थिति हो जाती है। अपने सिवाय दूसरा तत्व प्रतीत नहीं होता। सीमा-रहित, समय-काल रहित, इच्छा वासना संकल्प रहित नित्य रहने वाला शाश्वत, परमोच्च आनन्द का अनुभव ही शेष रहता है। अनन्त सृष्टिचक्र संलग्न जीवात्मायें हमारे अपने आप में एक साथ ही सर्वात्म आत्ममय परमानन्द में ज्ञानस्वरूप प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं,
सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा,
सर्वत्र समदर्शनः॥

(श्री मद् भगवद्गीता)

इस सर्वश्रेष्ठ आनन्द की प्राप्ति योगशक्ति-शील अध्यात्म-भूमि भारत हिमालय में अति सुगमता से हो सकती है।

सर्व प्रथम मानवाकार ब्रह्ममन्दिर में, जीवात्मा ने इस पृथ्वीमण्डल को त्रिविष्टप (तिब्बत) में प्रकट होकर सुशोभित किया। श्रीमानसरोवर हिमालय पर्वत श्रेणियों के अँचल को पवित्र किया। योग योगेश्वर श्री कृष्ण गीता में गाते हैं—

महर्षयः सप्त पूर्वे,
चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता,
येषां लोक इमाः प्रजाः॥

अर्थात्—आदिकाल में सात महर्षि, चार मनु मेरी मानसिक भावना कल्पना से प्रकट हुए। आज तक उनकी ही मैथुनी सृष्टि परम्परा लोक में मानव मात्र की पीढ़ियाँ चल रही हैं। वेद इतिहास में भी बतलाया है कि त्रिविष्टप (तिब्बत) में सर्वप्रथम सात महर्षियों ने ध्यानस्थ होकर व्योमवाणी के रूप में दिव्य-वाणी संस्कृत में वेद-मन्त्र सुने और सिद्ध-स्वरूप दिव्य नागरी लिपि में वेद-मन्त्र देखे। निरुक्ति में "ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः" ऋषि मन्त्रों को और उनके तत्व को साक्षात् देखते हैं।

चार मनुष्यों ने वेदमन्त्रों को ऋषियों से पढ़ा समझा और मनुस्मृति के रूप में मानव-समाज में शिक्षा चलाई। वैदिक ६ अङ्गः (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) ज्योतिष (६) छन्द लक्षण की शिक्षा-दीक्षा लेकर राज्य व्यवस्था चलाई। इसी शिक्षा से प्रभावित विश्व का मानवमात्र, भारत के योगी, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, प्रभुप्रेमी, आचार्य गुरुजनों के अनुशासन में आत्म-कल्याण की शिक्षा-दीक्षा लेने के लिए आज भी परम श्रद्धा विश्वास रखते हैं। सच्चे महापुरुषों का हृदय भी दीन-दुखियों के दुःख को हरने में परम दयालु है, परन्तु सामूहिक संगठित व्यवस्था की आवश्यकता है। योगाचार्यों की संख्या भी अधिक होनी चाहिये जो अपनी चिन्ता न करके आजीवन लोक-कल्याणकारी विद्या की खोज और प्रचार करें। यदि विश्व की सारी भाषा और लिपियों की प्रतियोगिता हो तो परम वैज्ञानिक तत्व के आधार पर संस्कृत दिव्य वाणी और दिव्य नागरी वाणी एवं दिव्य नागरी लिपि ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध है। क्योंकि यह ईश्वर की रचना है।

योगाचार्य तैयार करने के लिए उनकी आजीवन व्यवस्था करना परमावश्यक है। आज के युग में वही सही रास्ते पर चल सकता है जिसकी आवश्यकताएँ कम हों और उनको भी उसको चिन्ता न हो। उनकी व्यवस्था किसी सामूहिक श्रीमानदी द्वारा शृंखला बद्ध सदा के लिए निश्चित की गई हो। भारत भूमि के हिमालयाञ्चल में सर्व प्रथम मानव आया और उसने जन-कल्याण योजना विश्व में चलाई। भारत भूमि के मिट्टी जल वायु पत्थरों में ऐसे संस्कार अभी तक भरे हुए हैं। जिससे विश्व के नर-नारी की समस्याएँ हल

हो सकती है। जब तक यह पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र रहेंगे यह पवित्र संस्कार भू-मण्डल के मानव मात्र को पवित्र करते रहेंगे। भारतवासियों का कर्तव्य है कि किसी की नकल न करके आदर्शशील भारतीय योगाचार्यों के अनुशासन में अपनी उन्नति और सर्वोन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

धनी मानी महानुभाव भी अनुभव कर रहे हैं कि भौतिक बाह्य पदार्थ जितने जुटते हैं उतनी ही आवश्यकताएँ और अशान्ति बढ़ती जाती है। योगाचार्य महर्षि पतञ्जलि और इनके भी पूर्वाचार्यों ने यम-नियमों का उत्तम कल्याणकारी विधान बनाकर बाल्यकाल की शिक्षा में ही हृदय में बैठाने की व्यवस्था बना रखी है। केवल पाँच यमों का पालन करने के लिए ही पृथ्वी मण्डल में विभिन्न राज्य व्यवस्थाएँ की गई हैं। फिर भी जनता नियन्त्रण पर नहीं चलती। कारण है शिक्षण की कमजोरी। हृदय में श्रद्धा न होने पर कितना भी दबाव डाला जाय, दिल नहीं मानता। यदि योगाचार्य गुरुजनों के अनुशासन में रह कर यह बाल्यकाल की शिक्षा हो जाय तो हृदय में संस्कार गहरे बैठते हैं। फिर राज्य-व्यवस्था अथवा समाज कल्याणकारी व्यवस्था में कठिनाई नहीं आती। मनुस्मृति में मनु राज्य-व्यवस्था के लिए लिखते हैं—

यमान् सेवेत् सततं न,
केवलान् नियमान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो,
नियमान् केवलान् भजन्॥

अर्थात्—पाँच यमों का निरन्तर पालन करने वाला बुद्धिमान व्यक्ति संसार में सफल जीवन उन्नति कर जाता है। केवल नियमों का पालन करने वाला गिर जाता है।

पाँच यम

१. अहिंसा—

प्राणिमात्र की आत्मोन्नति को ध्यान में रखते हुये सर्वत्र सर्वदा अपनी जीवन यात्रा चलाने का निर्णय कर लेना। किसी जाति देश, काल, समयका भेदभाव न रखते हुए जीव-मात्र का हित चिन्तन पूर्वक व्यवहार करना अहिंसा है। इसकी प्रतिष्ठा हृदय में पक्की होने पर उस महानुभाव के साथ हिंसक प्राणी भी वैर विरोध त्याग देते हैं।

२. सत्य—

प्राणिमात्र की आत्मोन्नति को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश काल समय और जाति का भेद न रखकर प्राणिमात्र के लिए हितकारी अपना सत्य व्यवहार युक्त जीवन यात्रा का प्रोग्राम जीवन पर्यन्त अटल रखना सर्वोन्नतिकारी सत्य है। यह भाव हृदय में बैठ जावे तो उस महानुभाव का किया हुआ कार्य चिन्तन अवश्य ही सफल होता है।

३. अस्तेय—

प्राणिमात्र की आत्मोन्नति को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश काल समय जाति का भेद न रखकर वस्तु के अधिकारी की आज्ञा के बिना मन-वाणी-कर्म से उस वस्तु का अधिकारी नहीं बनना। ऐसा जीवन पर्यन्त नियम बना लेना—अस्तेय चोरी करना है। हृदय में यह भाव पक्का सदा के लिए बैठ जाए तो मानव जीवन के आवश्यक सर्व रत्नों की प्राप्ति हो जाती है। किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता।

४. ब्रह्मचर्य—

प्राणिमात्र की आत्मोन्नति को ध्यान में रखते हुए देश काल समय जाति का भेद न रख कर सर्वत्र सर्वथा नित्य निरन्तर अपनी सम्पूर्ण शक्ति को ब्रह्मचिन्तन में लगाना। ऐसा पक्का नियम हृदय में जीवनपर्यन्त के लिए बैठ जाये तो अद्भुत शक्ति और आत्म बल की प्राप्ति होती है।

५. अपरिग्रह —

प्राणिमात्र की आत्मोन्नति को ध्यान में रखते हुये देश काल समय जाति का भेद न रखते हुए अपने जीवनोपयोगी आवश्यकताओं से अधिक किसी भी वस्तु का संग्रह न करने का जीवनपर्यन्त नियम बना लेना। यह भाव पक्का हृदय में बैठ जाय तो उत्तम ज्ञान ब्रह्मविद्या का अधिकारी बन जाता है। इस महानुभाव को प्रतिभास होता है कि मैं किस लिये आया हूँ, मुझे क्या करना है। कितने कर्मों से यह सुख-दुःख के चक्र में पिस रहा हूँ। एक सुख के एक कार्य करता हूँ तो बीसों दुःख उपस्थित हो जाते हैं।

अतः मुझे सर्वोच्च सत्‌चित् आत्मानन्द की प्राप्ति के लिये पक्का नियम जीवनपर्यन्त बना लेना अत्यावश्यक है। इस महानुभाव को इसी जीवन में आत्म साक्षात्कार हो जाता है। आवश्यकता से अधिक संग्रह करने वाले ईश्वरीय वस्तु भण्डार के चोर बन जाते हैं। मुझे एक उदाहरण स्मरण आ रहा है कि—जब बंगाल में अंग्रेज अधिकारियों ने लाखों आदमी भूखे मार दिए उस अमानवीय योजना में जिन भारतीयों ने सहयोग दिया अनाज खरीद कर समुद्री जहाजों में भरा, उनमें से जो मेरे सम्पर्क में आये उनको मैं टी० बी० पागलपन अनेक बीमारियों के शिकार बन गये। कई जन्मों तक भोगते रहेंगे। इस अपराधी को दूसरा नहीं बचा सकता, अवश्य ही जन्म-जन्मान्तरों पर्यन्त कमगादड़ के समान उल्टे लटककर भोगना पड़ता है। ईश्वर ने मनुष्य को कार्य करने के लिये अच्छे-बुरे कार्य का मार्ग दर्शन ऋषियों द्वारा किया है, परन्तु फल भोगने के लिये परतन्त्र—ईश्वर का तन्त्र है। अनेक जन्म-कर्म चक्र में पिसना ही पड़ेगा। कोई लोभ बुद्धि का चोर चाहे कि मैं दूसरों की अवनति वाला कर्म लेता हूँ, फिर प्रायश्चित करके आत्मोन्नति कर लूँगा। तो यह सोच-

बिजली के प्रकाश के समान अथवा पूर्व पुण्य-कर्म-फल को नष्ट करने वाली समझो बात समझें।

मेरे श्री सद्गुरुदेव जी के एक शिष्य को अपने पूर्व जन्म का सारा दृश्य दीखने लगा। उसने कहा कि गुरुदेव मेरे साथ दो तीन आदमी भेजें। मैंने अपने पूर्व जन्म वाले मकान के एक कमरे में दो बर्तन धन से भर कर दबाये हैं। यदि आधा मुझे देने की शर्त मान लें तो उन पुत्रों को आधा धन मिल जायेगा अन्यथा उस धन का नाश हो जायेगा। उसके साथ गये। उसने दीखा कि यह अमुक आदमी का मकान है। उसके दो पुत्र हैं, उनके ये नाम हैं। उनकी माता का यह नाम है। यह मेरा ही घर था। अब मुझे पिछले जन्म का दबाया धन भी दीख रहा है। यदि आधा मुझे दे देने की शर्त स्वीकार हो तो मैं निकालता हूँ, शर्त स्वीकार करलो। दोनों बर्तन निकालने पर पुत्र कहते हैं कि हम आपको आने-जाने का किराया-भाड़ा दे देते हैं। हमारा तो इस शरीर से कोई संबंध नहीं। खाली हाथ वापिस जाना पड़ा। पक्का निश्चय कर लिया कि अपने आपको नीच कर्म में कभी नहीं लगाना, चाहे मृत्यु हो जाये। मृत्यु होने के बाद भी मैंने जो पूर्व-जन्म अर्जित अन्याय का फल भोगा। मुझे अब भोजन-निर्वाह करना भी कठिन है। इन दुष्ट पुत्रों के लिए धन कमाने में कई अच्छे सज्जनों को धोखा दिया। झूठ बोला, सत्य-धर्म को छोड़ा, हिंसा करी, चोरी करी, अधिक संग्रह किया। इस अन्याय की कमाई से अब यह धूर्त और पाप करेंगे। मेरे हिस्से में भी वह पाप आवेगा। इस त्यागी माया के चक्कर में आकर सर्वतोमति के, कुछ निश्चित नियमों का कभी त्याग नहीं करना चाहिये।

जिसको इसी जन्म में प्रभु-प्रेम प्राप्त करना हो उसके लिए योग योगेश्वर श्रीकृष्ण पक्का विधान बतलाते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं,
सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा,
सर्वत्र सम दर्शनः॥

अर्थात्—जिस महानुभाव ने अपना जीवन मेरे प्रेम में रंग लिया है, वह सर्वत्र-सर्वदा नित्य-निरन्तर प्रत्येक देश काल समय और जाति में, सृष्टि के अणु-अणु में परमात्मयोग युक्त स्थिर बुद्धिपूर्वक अपनी आत्मा का अनुभव करता है। अपनी ही आत्मा में सम्पूर्ण सृष्टि चक्र का अनुभव करता है। अतः किसी के नीच कर्म नहीं कर सकता। वह जीवन्मुक्त होता है। वह दूसरे के सुख-दुःख को अपने आप में अनुभव करते हुए चलता है।

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

अर्थात्—अपने लिए अहितकारी प्रतीत हो तो उसको दूसरों पर नहीं बरतना चाहिए।

आगे इसी लेख के उत्तरार्द्ध में योग के ५ नियमों तथा आसन ध्यान धारणा और समाधि की व्याख्या की जायगी।

योगाचार्य महर्षि घेरण्ड

और चण्डकापालिक

[आचार्य श्री यशोवर्द्धन]

महर्षि घेरण्ड की गणना योग शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में की जाती है। इतिहास में इनके काल का प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है किन्तु इतना पता अवश्य चलता है कि उपनिषद् काल के उत्तरवर्ती ऋषियों में इनकी विद्यमानता थी। जिस काल में यह विद्यमान थे उसी समय इस देश में चण्डकापालिक नाम के एक राजा राज्य करते थे। चण्डकापालिक की विशेष अभिरुचि योग-विद्या के प्रति थी। इस राजा ने वेदों-उपनिषदों और पुराणों आदि में उल्लिखित सभी योग प्रकरणों को ध्यान से पढ़ा था किन्तु जो कुछ उसने पढ़ा था उससे राजा को पूर्ण सन्तुष्टि नहीं हुई थी। अपनी योग सम्बन्धी जिज्ञासाओं के समाधान हेतु वह अनेक मुनियों के आश्रमों पर भी आता-जाता किन्तु वास्तविक तत्व का दर्शन उसे कोई न करा सका। अन्त में उसे किसी प्रकार पता चला कि उसकी राजधानी से दूर दक्षिण दिशा की ओर जो तपोवन है उसमें घेरण्ड नाम के ऋषि रहते हैं और वे योग के साक्षात् अवतार बताये जाते हैं। अवश्य ही उनसे आपकी सभी जिज्ञासाओं का समाधान हो सकेगा। तदनुसार महाबली चण्डकापालिक ने अपने कुछ विश्वस्त सेवकों के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कई दिन की यात्रा के पश्चात् वह उस तपोवन में जा पहुँचा जहाँ महर्षि घेरण्ड रहते थे। ऋषि के आश्रम से कुछ दूर पर उसने अपने सेवकों को एक वृक्ष के नीचे छोड़ दिया और स्वयं नंगे पैरों ऋषि आश्रम पर पहुँचकर ऋषि को जो पूर्ण तपोनिष्ठ और योग-निष्ठ प्रतीत हो रहे थे राजा ने भूमि पर लेट कर साष्टांग प्रणाम किया। ऋषि ने यथोचित आसन देकर राजा को अपने समीप ही बैठ जाने को कहा। राजा के बैठ जाने पर ऋषि बोले—

राजन्! तुम्हारे आने का प्रयोजन मैं समझ चुका हूँ। तुम्हारे मनकी ऐसी जिज्ञासाओं को मैंने ध्यानयोग से जान लिया है। अतः समाधान होकर तुम उनका उत्तर सुनो।

घेरण्ड ऋषि ने राजा चण्डकापालिक की योग सम्बन्धी जिज्ञासाओं के जो उत्तर दिये हैं वही घेरण्ड संहिता के नाम से प्रचलित है।

इस लेख में हम घेरण्ड ऋषि के योग सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण विचार योग मार्ग के साधकों के हितार्थ देने का उपक्रम कर रहे हैं। यदि 'सिद्धयोग' के पाठकों को इन विचारों से कुछ भी मार्ग-दर्शन मिल सका तो हम अपने श्रम को सफल समझेंगे।

महर्षि घेरण्ड ने राजा को सम्बोधित करते हुए कहा, हे महाबाहो सुनो—

नास्तिमायासमं पापं,
नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्तिज्ञानात्परोबन्धु-
र्नाहङ्कारात्परोरिपुः।

अर्थात् माया के समान कोई पाप नहीं, योग के समान कोई बल नहीं, ज्ञान के समान कोई बन्धु नहीं, और अहंकार के समान कोई शत्रु नहीं है।

यस्य नाहंकृतो भावो,
बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
यः समः सर्वभूतेषु,
जीवनं तस्य शोभते॥

जिसमें अहंकार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि में अहंभाव लिप्त नहीं है जो सब भूतों के समान भाव से देखता है उसका जीवन प्रशंसनीय होकर शोभा को प्राप्त होता है।

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यै-
र्जायते प्राणिनांघटः।
घटादुत्पद्यतेकर्म,
घटीयन्त्रं यथाभवेत्॥

प्राणियों के शरीर सुकृत और दुष्कृत से उत्पन्न होते हैं। शरीर से कर्म और कर्म से शरीर की उत्पत्ति होती है।

ऊर्ध्वाधोभ्रमतेयद्वत्,
घटीयन्त्रं गवां वशात्।
तद्वत्कर्मवशाज्जीवो,
भ्रमतेजन्ममृत्युभिः॥

जैसे सूर्य की किरणों के अनुसार सूर्य घड़ी की चलती हुई सुइयाँ समय बताती हैं वैसे ही प्राणी भी जन्म-मरण रूपी संसार चक्र में घूमता रहता है।

समाधिः संविदुत्पत्तिः,
परजीवैकतां व्रजेत्।
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा,
कूटस्थो दोषवर्जितः॥

अर्थात्—जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होना ही 'समाधि' है। क्योंकि एक ही आत्मा नित्य, सर्व व्यापी, कूटस्थ और दोष-रहित है।

सार्वकालिक, सार्वदेशिक भारतीय-दर्शन मे

योग का महत्व

[श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर']

युग-परम्परा से विश्व-मानव आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने का इच्छुक रहा है।

विश्व के प्रबुद्ध-मानवों ने तब पुरा-काल से यह स्वीकार कर लिया है कि ज्ञान वही उत्तम है जिसके द्वारा विश्व के मानव-मात्र का कल्याण और विश्व शान्ति सम्भव हो।

इस ज्ञान के द्वारा ही "जियो और जीने दो," सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के सत्पथ पर चलने की भावनाओं का उदय हुआ करता है, जो सर्वथा स्तुत्य है।

संसार में प्रत्येक मानव की यह बलवती आकांक्षा रहती है कि उसको जीवन में सुख, यश प्राप्त हो और परलोक में शाश्वत-शांति।

इस आकांक्षा की पूर्ति वे ही मानव कर पाते हैं जो सदाचारी रहकर मानव-कल्याण-विषयक-ज्ञान के अनुसार अपना-अपना आचरण बनाकर लोक-हितैषी कार्यों में अपना योगदान देते हैं।

भारतीय दर्शन-ज्ञान केवल भारतवर्ष के लिए नहीं है यह तो सार्वदेशिक और सार्वकालिक-ज्ञान है जिससे सर्वत्र लाभ उठाया जा सकता है।

वेद-ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त है। ईश्वर की कृपा से भिन्न-भिन्न महर्षियों के हृदयों में उसका प्रादुर्भाव हुआ। पश्चात् मनीषी तपस्वियों द्वारा मानव-समाज में प्रचार और प्रसार।

वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम है। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का आविर्भाव ऋग्वेद के पश्चात् ही हुआ था।

पुराणों, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों की रचनायें भारतीय-महर्षियों ने समय-समय पर की थीं।

पुराणों का सम्पादन सर्व प्रथम कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने किया था। उनमें चार लाख श्लोकों को अठारह पुराणों में सम्पादित कर दिया था।

महाभारत जैसे प्रामाणिक, ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रणेता भी कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास जी ही थे।

योग-विषयक भारतीय-दर्शन का सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न श्रीमद्भगवद्गीता उक्त महाभारत का ही अंश विशेष है।

श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान अत्यधिक गहन और गूढ़ होते हुए भी इतना सरल, सरस, निष्पक्ष और उपयोगी है कि विश्व के मानव-

मानव सबसे एक समान लाभ उठाकर लोक और परलोक सफल बनाकर शाश्वत् शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय-दर्शन का स्पष्ट सन्देश है कि मानव अपना नैतिक स्तर ऊँचा उठाकर सदाचारी और आध्यात्मिक बनकर ही अपना अपने समाज का, राष्ट्र का और अखिल विश्व के मानवों का कल्याण कर सकता है।

गीता में वर्णित कर्म, ज्ञान और भक्ति का सार-रूप ही यह है :—मानव कर्म-रत रहकर अपना उत्तरोत्तर विकास करे यही सच्चा कर्म है। साधना द्वारा अपने-आप में शक्ति का संचय करे यही सच्चा ज्ञान है। किये गए समस्त कर्मों को सर्वदा ईश्वर को समर्पित कर दे, फल की आकांक्षा न करे यही सच्ची भक्ति और उपासना है।

गीता-ज्ञान, स्वयम् भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र-मुखारविन्द से निकला है। यथा—

गीता सुगीता कर्तव्या,
किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य,
मुख पद्माद्विनिःसृता॥

(महा० भीष्म० ४३/१)

गीता में, वेदों और शास्त्रों का सार रूप संग्रहीत करके, उच्चतम ज्ञान दिया गया है।

वाराह पुराण में तो भगवान ने स्वयम् यह स्वीकार किया है :—

गीता श्रयेऽहं तिष्ठामि,
गीतामेचोत्तमं गृहम्।
गीता ज्ञान मुपाश्रित्य-
त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

भावार्थ—मैं स्वयं गीता के आश्रय में रहता हूँ। गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता ज्ञान का आश्रय लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयम् घोषणा की है :—

जो मेरे इस मत को करते,
होकर श्रद्धा से संयुक्त।
ईर्ष्या तजकर, वे होते हैं,
कर्मों के बन्धन से मुक्त॥

(गीता ३/३१)

भगवान ने तो यहाँ तक कह दिया है कि गीता का अध्ययन करने वाले मानव को वही पुण्य प्राप्त होता है जो मेरी पूजा करने से मिला करता है। यथा—

धर्म-युक्त-संवाद यही जो,
हम दोनों का पढ़ता पार्थ।
ज्ञान-भाव से मुझको पूजे,
ऐसा मेरा मत निस्स्वार्थ॥

(गीता १८/७०)

ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों मार्गों द्वारा एक साथ या अलग-अलग साधना करके

साधक सिद्धि प्राप्त कर सकता है किन्तु उसको अपने आचरण में समता-भाव को दृढ़ता पूर्वक अपनाना चाहिए :—

सुहृद, मित्र, वैरी, निष्पक्षी,
द्वेषी, धर्मात्मा, विद्वान ।
पापी, मध्यस्थी को समकर,
जो देखें, हैं श्रेष्ठ महान ॥

(गीता ६/९)

विनयी विद्यावान विप्र या,
गऊ गज श्वान और चण्डाल ।
सबको समता ही से देखे,
वे ज्ञानी जन हैं नरपाल ॥

(गीता ५/१८)

प्राणि मात्र को समकर लेखे,
माने सुख दुख एक समान ।
माना गया वही सर्वोत्तम,
योगी, हे पाण्डव सन्तान ॥

(गीता ६/३२)

अठारह पुराणों के प्रणेता कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास ने समस्त ज्ञान का निष्कर्ष देते हुए कहा है—

अष्टादश पुराणेषु,
व्यासस्य वचनं द्वयम् ।
परोपकाराय पुण्याय,
पापाय परपीडनम् ॥

परोपकार करना ही पुण्य और दूसरों को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। यह ज्ञान का निष्कर्ष है।

पाप और पुण्य के इस भेद को यदि मानव मात्र भली प्रकार समझकर अपना-अपना आचरण सुधारने का यत्न करे तो उसका, उसके समाज का और राष्ट्र तथा अखिल विश्व के मानव मात्र का अमित हित हो जाय।

गीता-ज्ञान के प्रचार-प्रसार द्वारा ही विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकने की संभावना है इस तथ्य को विश्व के प्रबुद्ध विद्वान मुक्त कण्ठ से स्वीकार कर चुके हैं। भारतीय-दर्शन ही विश्व को मार्ग दर्शन देकर संकट ग्रस्त मानवों की रक्षा कर सकेगा।

———

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसङ्ग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजङ्ग ॥
मान सहित विष खाइके, शम्भु भये जगदीश ।
बिना मान अमृत पियो, राहु कटायो शीश ॥

पद्यानुवाद—

ऋग्वेदीय लक्ष्मीसूक्त

[श्री वेदव्रत शास्त्री]

जातवेद ! सर्वज्ञ ! स्वर्णमयि ! चन्द्रवदनि हरितामावेश ।
स्वर्ण रजतमालामयि लक्ष्मी, लाओ मेरे हेतु विशेष ॥

प्रभा पुंज के केन्द्र देव तुम, अविनाशी माता को आज ।
मेरे हेतु यहाँ ले आओ, जिससे पूरे हों मम काज ॥

या प्रभूत लक्ष्मी को मैं भी, गौ अश्वों को रखा करूँ ।
दुःखी जनों की सब बाधा को, पा लक्ष्मी मैं हरा करूँ ।

लक्ष्मी के घर में आते ही, रथ, हाथी, घोड़ों का नाद ।
जातवेद ! प्रमुदित करता है, मन पाता उससे आह्लाद ।

ब्रह्म स्वरूपा माता जो है, मन्द मन्द मुसकाती है ।
सोने जैसे आभा वाली, आर्द्रमना कहलाती है ।

तेजोमयि परिपूर्णा माता, भक्त हृदय को भाती है ।
वही पद्महस्ता माता निज, सन्तति को अपनाती है ।

चन्द्र समान कान्ति वाली को, कीर्तिमती द्युतिशाली को ।
देवगणों से पूजित मां को, उस उदार गुणशाली को ।

शरण मन से जाता हूँ मैं, दुःख दारिद्र्य मिटाने को ।
लक्ष्मी मां को ध्याता हूँ मैं, सुख सम्पत्ति गृह लाने को ।

सूर्य समान प्रकाश स्वरूपे ! तव तप बल से बिल्व पवित्र ।
उसकी आहुति पा मां मुझको, भीतर बाहर करो पवित्र ।

देवसखा यह धन कुबेर भी, दक्षायणी कीर्ति के साथ ।
ले मणि आइ सखा निज संग में, मम घर हो अब करें सनाथ ॥

इसी राष्ट्र में जन्म हमारा, कीर्ति ऋद्धिदाता माता।
तुमसा कोई अन्य नहीं है, भ्राता बन्धु और माता॥

ज्येष्ठ बहिन जो सदा अलक्ष्मी, क्षुधा पिपासा की जननी।
उसका नाश चाहता हूँ मैं, मा लक्ष्मी जग दुख-हरनी॥

स्वर्ण दुराधर्षा गौओं के, गोबर से जो पुष्ट रहे।
गन्ध गुणवती पुष्पा मा को, पृथ्वी रूपा सभी कहें।

सब भूतों की वही स्वामिनी, उत्तमपदा लक्ष्मी रूपा,
सदा निवास बना बैठे वह, मेरे घर लक्ष्मी रूपा॥

मन: कामना पूर्ण रहे मम, हों संकल्प सिद्ध जग में।
वाणी मेरी सत्य रूप हो, मां लक्ष्मी पूजे घर में॥

गौओं तथा विविध पशुओं से, घर मेरा भरपूर रहे।
अन्न अन्य या भोग वस्तु की, चिन्ता से मन दूर रहे।

पद्म: स्वरूपा लक्ष्मी माता, घर में नित्य निवास करे।
सारे जग के सारे प्राणी, प्रतिदिन उसका गान करें॥

लक्ष्मी पुत्र रूप कर्दम से, है उत्पत्ति प्रजा जन की।
कर्दम ऋषि ही पुत्र रूप में, हों उत्पन्न आस मन की।

पद्ममालिनी माता का नित, हो निवास जिससे घर में॥
जग में जितने दिव्य तेज हैं, आप समान स्निग्ध नहीं।

लक्ष्मी सुत चिक्लीत बसें नित, मेरे घर में सभी कहीं।
मां लक्ष्मी का वह भी मेरे घर में, चिर अधिवास करें।

अग्निदेव ! तुम आर्द्र स्वभावा पद्ममालिनी माता को।
पुष्टि स्वरूपा सरोजहस्ता, चन्द्रवदनि सुखदाता को।

पीत स्वरूपा स्वर्णमयी उस, लक्ष्मी रूपा माता को।
मेरे हेतु यहाँ ले आओ, जग में सब सुखदाता को॥

योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिरी

[डा० विष्णुदत्त शर्मा, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय]

भारत की इस पुण्य धरा पर समय-समय पर महान आत्माओं का आविर्भाव होता रहा है। प्रत्येक ने अपनी साधना द्वारा चिरन्तन सत्य का अनुसन्धान किया, यही कारण है कि भारतीय साधना एवं भारतीय साधकों की धारायें बहुमुखी हैं, परन्तु इतने भेद तथा वैचित्र्य रहने पर भी उन सबों का चरम लक्ष्य एक ही है। किसी ने कहा है—

"यत्र तत्र समये यथा योऽसि,
सोऽस्यभिधया यथा तथा,
वीतरागकलुषश्च चेद्भवान्,
एक एव भगवन् नमोऽस्तु ते॥"

अर्थात् जो लोग राग-द्वेष और माया-मोह से परे हैं वह चाहे किसी नाम से पुकारे जाते हों, किसी देश और काल में शरीरधारी रहे हों, किन्हीं शब्दों में अपने उपदेशों को कहा करते हों, वे समान रूप से हमारे पूज्य हैं। संसार की नश्वरता एवं राग-द्वेष से परे होने की शिक्षा इन सबके जीवनसे हमें मिलती है। इन महापुरुषों के उपदेशानुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि के विकास और रुचि के अनुसार अपना मार्ग स्वयं चुन सकता है। प्रस्तुत निबन्ध में श्री श्यामाचरण लाहिरी जी का योगमय जीवन चरित्र वर्णित है।

लाहिरी जी का १८२८ ई० में कृष्णानगर के समीप घुर्णी ग्राम में एक पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता धर्मनिष्ठ एवं योगमार्गी साधक थे। बाल्यावस्था में ही श्यामाचरण जी की माँ का देहान्त हो गया जिससे इनके पिता इन्हें लेकर काशी आ गये और स्थायी रूप से काशी ही में निवास करने लगे। पिताजी की देखरेख में ही लाहिरी जी के लिए आधुनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई जिससे उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत एवं फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया। १८ वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया एवं २३ वर्ष की आयु में आपने सरकारी इंजीनियरिंग विभाग में कर्मचारी पद पर कार्य आरम्भ किया। विभिन्न स्थानों में कार्य करते हुए आपका स्थानान्तर 'दानापुर' हुआ, उस समय आपकी आयु लगभग ३३ वर्ष की थी। इन्हीं दिनों सरकारी कार्य से आपको रानीखेत जाना पड़ा जहाँ से आपके आध्यात्मिक जीवन का अभ्युदय हुआ।

रानीखेत से १५ मील दूर द्रोणगिरि नामक पर्वत है, जिसके चारों ओर हिमालय दूर तक फैला हुआ है। कहा जाता है इस द्रोणगिरि पर्वत की कन्दराओं में अनेक योगी अपनी साधना में रत हैं, कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने हजारों वर्षों से अपने पञ्चभौतिक शरीर को धारण कर रखा है। श्यामा चरण अपने आफिस का कार्य प्रतिदिन प्रातःकाल ही समाप्त कर लिया करते और फिर सारे दिन अवकाश रहने के कारण हिम कन्दराओं के भ्रमण में ही व्यतीत करते। एक दिन लाहिरी जी भ्रमण करते काफी दूर निकल गये। सूर्यास्त होने को था। श्यामाचरण इस महिमामय प्राकृतिक दृश्य को अपलक नैनों से निहार रहे थे। अभी कुछ ही क्षण व्यतीत हुये थे कि उन्हें एक आवाज सुनाई दी "श्यामाचरण! श्यामाचरण!" श्यामाचरण अत्यन्त विस्मित थे कि इस जन शून्य स्थान पर मेरा नाम लेकर पुकारने वाला कौन है। अनेक शंकाओं एवं कौतूहल के साथ जिधर से आवाज आ रही थी श्यामाचरण भी उसी ओर आगे बढ़े। अभी कुछ दूर ही आगे बढ़े थे कि देखा एक जटाजूटधारी योगी जिनके चेहरे पर अलौकिक तेज है समीप की ही एक गुफा के द्वार पर खड़े हैं। उनकी स्नेह दृष्टि से मानो अमृतधारा बरस रही थी। प्रसन्न हो वे मधुर वाणी में बोले "श्यामाचरण अब तुम आ गये। बैठ जाओ विश्राम कर लो।" श्यामाचरण जी अब भी संदेह में थे कि साधु को मेरा नाम किस तरह ज्ञात हो गया। किन्तु और भी अधिक आश्चर्य उन्हें तब हुआ जब कि मन में यह संशय उठते ही उन महायोगी ने श्यामाचरण के पिता, पितामह के नाम, धाम, परिचय सब कुछ बता दिये। केवल इतना ही नहीं अपितु एक घनिष्ठ चिर-परिचित की तरह श्यामाचरण की ओर देखते हुए वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। पुनः कुछ देर बाद बोले "बेटा तुम कुछ भी संशय अपने मन में मत रखो, मैं तुम्हारा अपना ही हूँ। तुम्हारी ही प्रतीक्षा में इस शिखर पर मैं अब तक बैठा हुआ था। विस्मय विमुग्ध श्यामाचरण जी को वे उस गुफा में ले गये जिसके एक कोने में धूनी, व्याघ्रचर्म, कमण्डल, कम्बल आदि वस्तुयें पड़ी थीं। महायोगी ने श्यामाचरण से पूछा "इन सभी वस्तुओं को तुम पहचानते हो या नहीं? ये सब तुम्हारी ही हैं। क्या तुम्हें कुछ भी स्मरण नहीं रहा?" श्यामाचरण कुछ भी न समझ सके। तभी महायोगी ने मुस्कराते हुए आगे बढ़ कर श्यामाचरण का स्पर्श किया। स्पर्श होते ही श्यामाचरण जी को लगा जैसे कि बिजली का तार किसी ने छुआ दिया हो। उनका शरीर बार-बार काँपने लगा। अब क्या था, श्यामाचरण जी के मानस पटल पर पड़ा हुआ माया जाल तुरन्त हट गया। पूर्व जन्म के आध्यात्मिक जीवन का चित्र श्यामाचरण जी के सामने आ गया। ये शक्तिधर योगी ही उनके

इहलोक और परलोक के परमाराध्य गुरु थे। गुफा में पड़ी हुई सभी वस्तुयें उन्हीं के द्वारा परिचित थी। सर्व शक्तिमान गुरुदेव के स्पर्श मात्र से उनके जन्म जन्मान्तर के विघ्न क्षण-भर में नष्ट हो गये। महायोगी मुस्कराते हुए कह रहे थे "श्यामाचरण जब तुम अपनी तत्त्व साधना पर आरूढ़ हो रहे थे तभी तुम्हारा शरीरान्त हो गया। अब तुम्हें ईश्वर निर्दिष्ट कार्य के लिये पुनः जन्म लेना पड़ा है। मैं यहाँ तुम्हारी इन वस्तुओं को धरोहर के रूप में रखकर अब तक तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा। याद रखो ५ दिन बाद तुम पुनः दानापुर लौट जाओगे और तब तक मेरा कार्य भी पूरा हो जायेगा।"

श्यामाचरण जी के जीवन में यह महान आश्चर्य था। जन्म-जन्मान्तर के इस अलौकिक योग विभूति सम्पन्न गुरु की अपेक्षा घनिष्ठ परम आत्मीयजन कौन हो सकता है जो मेरी प्रतीक्षा में अब तक दिन गिन रहा हो। ऐसे विचारों के मन में आते ही सारे संसार की मोह-ममता उनके अन्दर से तिरोहित हो गई, प्रेमानन्द की हिलोरों से अन्तःकरण निर्मल हो गया एवं उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। महायोगी ने उन्हें प्रेम से अपने वक्षस्थल से लगा लिया। गुरु इस स्पर्श से उनकी वृत्तियां अन्तर्मुखी हो गईं। कुछ देर बाद जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ, गुरुदेव उन्हें गुफा के एक कोने में ले गये। वहां मिट्टी की हण्डियों में एक तरल पदार्थ था। गुरुदेव ने लाहिरी से इस तरल पदार्थ को पीने के लिए कहा। आज्ञा पाते ही लाहिरी उसे पी गये और फिर गुरु आज्ञानुसार पास की एक पहाड़ी नदी के किनारे जाकर लेट गये। उस तरल पदार्थ के पीने से कुछ ही देर में उनका शरीर शुद्ध हो गया जिससे उन्हें अपनी देह दिव्य आभासित होने लगी। अर्ध रात्रि का समय था, तभी उनके समीप एक अपरिचित व्यक्ति एक नवीन वस्त्र लिए उपस्थित हुआ। उसने लाहिरी जी से वह वस्त्र पहनने के लिए कहा और साथ ही गुरुदेव का संदेश कह सुनाया। कुछ ही समय में लाहिरीजी गुरुदेव के समीप पहुँच गये। प्रातःकाल की शुभवेला में गुरुदेव ने लाहिरीजी को योग दीक्षा प्रदान की। एक ओर शक्ति सम्पन्न सद्गुरु कृपा की वर्षा करने वाले और दूसरी ओर अधिकारी शिष्य। गुरुदेव के आशीर्वाद से लाहिरीजी अनेक दुर्लभ अनुभूतियों का आस्वादन करने के लिए समर्थ हो गये। एक दिन महायोगी ने लाहिरी को सस्नेह आलिंगन करते हुए कहा, "बेटा जिस ईश्वरीय विधान से तुम्हें तुम्हारी कोई वस्तु मिली है उसी के निर्देशानुसार तुम्हें संसार में रहकर ही मानव-कल्याण के लिए इस परम गोपनीय योग साधन को योग्य पात्रों के बीच ही वितरित करना होगा। अतः अब तुम्हें अपने कर्म-स्थल पर लौटना होगा और गृहस्थाश्रम में रहकर ही इस कार्य के लिए विशिष्ट आचार्य की महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करनी होगी।"

यह सुनकर श्यामाचरण जी अश्रुपूर्ण नेत्रों से कातरस्वर में कहने लगे "बाबा मुझे अब पुनः संसार में जाने के लिए न कहें। मैं आपके चरणोंमें रहकर ही जीवन व्यतीत कर दूंगा। मैं अपनी सम्पदा पा गया हूँ। मेरे मन में अब कोई भी कामना नहीं है।" गुरुदेव ने लाहिरी को गले से लगा लिया और बड़े स्नेह से बोले, "बेटा! अब तुम मुझसे कभी भी अलग नहीं हो। मैं सदैव अदृश्य रूपसे तुम्हारे साथ रहूँगा और आश्वासन दिया कि जब भी तुम मेरा स्मरण करोगे मैं स्थूल रूप से तुम्हारे समक्ष उपस्थित रहूँगा।"

गुरुदेव की आज्ञानुसार श्यामाचरणजी ने गुरुदेव की वन्दना कर सजल नेत्रोंसे द्रोणागिरि से प्रस्थान किया। गुरुदेव से विदा लेते समय लाहिरीजी ने प्रार्थना की कि इस दुर्लभ योग-साधना को कृपा कर सभी जन-साधारण के लिए सुलभ कर दें। प्रिय शिष्य की प्रार्थनाको गुरुदेव सहर्ष स्वीकार करते हुए बोले 'तथास्तु'। बाद में गुरुदेव की कृपा अनवरत रूपसे अनेक धाराओं में प्रवाहित होती रही। द्रोणागिरि के निवास कालमें लाहिरी जी ने द्रोणागिरि के अनेक सिद्ध महात्माओं के दर्शन किये। इन सिद्धों के योगैश्वर्यमय जीवन की कितनी ही अलौकिक लीलायें लाहिरीजी से सुननेको मिला करती थीं। इन सभी सिद्ध पुरुषों की आध्यात्मिक प्रगति में "महासिद्ध बाबाजी" का ही योगदान रहा, ऐसा लाहिरी जी के भी मुखसे सुनने को मिलता था।

लाहिरी महाशय को जो गुरु कृपा प्राप्त हुई उसके पीछे पूर्व जन्म के संचित पुण्यों के साथ-साथ इस जीवन की गुरु-शिष्य परम्परा की वंशानुक्रमिक धारा भी कार्य कर रही थी। लाहिरी महाशय अपने गुरुदेवको बाबाजी कहा करते थे। इस जीवन-मुक्त महापुरुष को कुछ साधकगण 'त्र्यम्बक बाबा' या 'शिव बाबा' के नाम से भी सम्बोधित करते। महापुरुषों द्वारा ऐसा भी सुनने को मिलता है कि ये सर्वशक्तिमान 'बाबाजी' हमारे दादागुरु "योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी" ही हैं। अस्तु।

अब लाहिरीजी दानापुर लौट आये। प्रतिदिन ऑफिस का कार्य समाप्त कर वे मौन भाव से अपनी योग साधना में निमग्न रहा करते। महायोगी के कृपा-स्पर्श से उनके आध्यात्मिक जीवन का शतदल एक-एक कर प्रस्फुटित होने लगा था। शनैः शनैः श्यामाचरणजी की अलौकिक योग विभूतियां प्रकट होने लगीं, जिससे वे अब जन-समुदाय से अपरिचित न रह सके।

एक बार की घटना है, उनके अफसर कई दिनों से उदास देखने में आ रहे थे। श्यामाचरणजी ने उनसे उदासी का कारण पूछा। इस पर उनके अफसर ने कहा कि मेरी पत्नी

इंग्लैण्ड में इन दिनों अत्यन्त रोग-ग्रस्त है, उसका कई दिनों से कोई पत्र मुझे नहीं मिला है इसीलिए अधिक चिन्ता है।" लाहिरी जी का हृदय करुणासे भर गया। वे समीप के एक एकान्त कमरे में जाकर ध्यानस्थ होगये। कुछ देर बाद वे कमरे से बाहर निकले और साहब को सूचित किया कि उसकी पत्नी अब पूर्ण स्वस्थ हो चुकी है और वे शीघ्रही आपको पत्र लिखेंगी। इतना ही नहीं बल्कि उस पत्र की भाषा एवं विषय-वस्तु भी बतला दिया। इसके कुछ दिन बाद ही उस अधिकारी को अपनी पत्नी का पत्र मिला। पत्रकी भाषा एवं विषय वस्तु पढ़ कर वह आश्चर्य चकित रह गया क्योंकि पत्र में सब कुछ वही था जिसे लाहिरी ने कुछ दिन पूर्व बतला दिया था। कुछ ही महीनों बाद साहब की पत्नी भारत आ गई और अपने पति के साथ दानापुर ही रहने लगी। सहसा एक दिन वे लाहिरी जी को देख कर आश्चर्यचकित रह गई और अपने पति से कहने लगीं, "इन महात्मा को मैंने इंग्लैंड में एक दिन अपनी रोग शय्या के समीप खड़े देखा। जीवित रहने की जब कोई आशा न रही तब इन्हीं के अलौकिक कृपा पूर्ण स्पर्श से मैंने रोगमुक्त हो पुनर्जीवन प्राप्त किया।"

साहब ने भारतीय योगियों की कितनी ही अलौकिक विभूतियां सुन रखी थीं परन्तु अपने आफिस के एक साधारण कर्मचारी का इस योग-सामर्थ्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर वह विस्मित हुए न रह सका।

लाहिरी जी सर्व सामर्थ्यवान गुरुदेव की अहैतुकी कृपा प्राप्त कर अनेकानेक आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करते हुए योग साधना के उच्चतम शिखर की ओर अग्रसर हो रहे थे। दानापुर में रहते हुये उन्होंने कुछ जिज्ञासु भक्तों को योग दीक्षा प्रदान की जिसमें "कृष्ण" नाम का एक सिपाही उनके आश्रम में रहकर एक समर्थ योगी के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

१८८६ ई० में लाहिरी जी सरकारी नौकरी से निवृत्त हुये और तभी से वे भगवान आशुतोष की पावन नगरी काशी में आकर स्थायी रूप से निवास करने लगे। सिद्धयोगी के आचार्य जीवन की महान भूमिका उसी समय से ही प्रारम्भ हुई। लाहिरी जी निज योग साधना की शिक्षा-दीक्षा प्रायः गृहस्थों को ही दिया करते। साधकोंको वे संन्यास ग्रहण करने से मना करते और अक्सर कहा करते "संन्यास जीवन बड़ा कठिन एवं दायित्व पूर्ण है। भली प्रकार जान लो कि एक बार गृहस्थ की भूलचूक क्षमा हो सकती है किन्तु एक संन्यासी की भूलचूक कदापि क्षमा नहीं" किन्तु वास्तव में गृहस्थ शिष्यों के अतिरिक्त कितने ही ब्रह्मचारी एवं दण्ड स्वामी इनके शिष्य थे। इनके समीप आने वाले संतों में देवघर के श्री बालानन्द ब्रह्मचारी और काशीके सुप्रसिद्ध सिद्धयोगी श्री भास्करानन्द सरस्वती जी के नाम उल्लेखनीय हैं। ऊँच-नीच, हिन्दू मुसलमान, सिक्ख-ईसाई सभी सम्प्रदायों के जिज्ञासु जनों के लिये योगिराज लाहिरी जी का कृपा

द्वार सदैव खुला रहता। जिस प्रकार सिपाही बुन्दा जिस प्रकार उनकी कृपा प्राप्त कर एक सिद्ध महापुरुष बन गया उसी प्रकार अब्दुल गफ्फूर खाँ नामक एक गरीब मुसलमान भी उनसे योग-दीक्षा प्राप्त कर योग की उच्चावस्था को प्राप्त हुआ। गरीब जनों से लेकर काशी नरेश श्री ईश्वरी नारायण सिंह जैसे व्यक्ति उनके शरणागत होते देखे जाते। लाहिरी जी का सिद्ध जीवन अलौकिक योग विभूतियों एवं करुणा से परिपूर्ण था। काशी नगरी में रहते हुए इन योगिराज की अलौकिक लीलायें समय-समय पर प्रकट होने लगी जिनकी चर्चा आज भी अनेक लोगों से सुनी जाती है।

लाहिरी जी उस समय गरुड़ेश्वर मुहल्ले में रहा करते थे। उनके अत्यन्त प्रिय शिष्य श्री युक्तेश्वर अपने एक घनिष्ठ मित्र 'राम' के साथ प्रतिदिन उनके दर्शनार्थ आया करते थे। कुछ दिन बाद अचानक एक दिन 'राम' को हैजा हो गया। युक्तेश्वर घबराते हुए योगिराज श्री लाहिरी जी के पास आये और सब कुछ कह सुनाया। लाहिरी जी ने सब कुछ सुनकर साधारण रूप से कहा कि किसी योग्य चिकित्सक का इलाज कराओ 'ठीक हो जायेगा'। गुरुदेव की आज्ञानुसार युक्तेश्वर जी ने वैसा ही किया परन्तु 'राम' को कोई भी लाभ न हो सका। अनेक प्रयत्न करने पर भी चिकित्सक अपने प्रयास में सफल न हो सके। थोड़ी ही देरमें 'राम' के प्राण पखेरू उड़ गये। मित्र के शव को वहीं छोड़कर युक्तेश्वर पुनः दौड़ते हुए गुरुदेव के समीप पहुँचे और 'राम' की मृत्यु का समाचार उन्हें देकर वहीं उनके समक्ष शोकातुर हो रुदन करने लगे। योगिराज सब कुछ सुनकर ध्यानस्थ होगये थे, कुछ देर बाद जब उन्हें बाह्यज्ञान हुआ तो उन्होंने युक्तेश्वर को सांत्वना दी और समीप में जलते हुए दीपक की ओर इशारा करते हुए बोले, "इसमें से थोड़ा सा तेल ले जाकर राम को पिला दो।" युक्तेश्वर सोच रहे थे कि किसको यह तेल पिलाऊँगा, राम की मृत्यु मेरे सामने हो चुकी है और गुरुदेव भी यह सब जानते हुए क्या कह रहे हैं। इन सब संशयके साथ उन्होंने गुरुदेव की आज्ञानुसार वहां से प्रस्थान किया और शीघ्र ही शव के पास आकर वह तेल किसी प्रकार 'राम' के मुँह में डाल दिया। इसके बाद जो घटना घटी उसे देखकर वहां का जन-समुदाय विस्मित-विमूढ़ हुए न रह सका। सभी ने देखा कि शवमें धीरे-धीरे प्राण संचार होने लगा और कुछ ही देर में उसने आँखें खोल दीं। धीरे-धीरे वह कहने लगा कि "अभी मेरे सामने अचानक तेजस्वरूप लाहिरीजी प्रकट हुए। उनके चेहरे पर मन्द-मन्द मुस्कान थी। वे शान्त स्वर में कह रहे थे कि राम अब और कितना सोओगे? उठो अब और शीघ्र ही मेरे पास आजाओ।" युक्तेश्वर कहा करते थे कि इसके बाद जो घटना घटी यदि मैं अपनी आँखों से उसे न देखता तो मुझे यह सब गप्प

मां प्रतीत होता। सभी ने देखा कि राम उठ कर गुरुदेव के समीप चलने को तैयार हो गया इसके पश्चात् दोनों मित्र एक साथ गुरुदेव के समीप पहुँचे। युक्तेश्वर जी को यह रहस्य भलीभांति समझ में आ गया था कि तेल कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं थी। वस्तुतः राम में प्राण संचार तो उनकी योग-शक्ति से ही हुआ था।

लाहिरी जी बड़े ही सरल भाव से महान योग-विभूतियों को धारण किये इस जीवन पथ पर चल रहे थे। किन्हीं विशेष प्रसंगों पर ही उन्हें अपनी योग-विभूति का प्रदर्शन करते देखा गया। योगिराजजी की एक अभया नाम की शिष्या थी जिसके पति कलकत्ते में वकील थे। इस दम्पति की आठ संतानें बाल्यकाल में चल बसी थीं। इस बार अभया लाहिरीजी के शरणागत हुई और एक संतानके लिए प्रार्थना की। लाहिरीजी ने कहा "ठीक है, इस बार तुम्हें कन्या उत्पन्न होगी परन्तु तुम्हें एक आदेश का पालन करना होगा। इस कन्या का जन्म रात्रि में होगा, अतः उस समय से लेकर सूर्योदय तक प्रसूति-गृह में एक तेल का दीपक जलता रहना चाहिये।"

अभया ने पूर्व निर्दिष्ट समय पर ही कन्या को जन्म दिया। गुरुदेवके आदेशानुसार प्रसूति गृह में तेलका दीपक जलाया। रात्रिके अन्तिम पहर पर धाय सो गई तेल समाप्त होने व लौ बुझने को ही थी कि एक आश्चर्यमय घटना घटी। बन्द कमरे का दरवाजा हवा के झोंके से खुल गया जिसकी आहट से अभया की नींद टूट गई। उसने विस्मित नेत्रों से देखा कि लाहिरीजी कमरेके दरवाजे पर खड़े हुए दीपक की ओर इशारा करते कह रहे हैं कि "अभया! यह देखो दीपक बुझ रहा है।" अभया हड़बड़ा कर उठी और दीपक में तेल डाल दिया। उसी समय उसने देखा कि गुरुदेव की मूर्ति अदृश्य हो गई।

वही महिला कुछ दिनों बाद लाहिरीजी के दर्शनार्थ कलकत्ते से काशी आ रही थी। जैसे ही वह हावड़ा स्टेशन पर पहुँची तो उसने देखा कि गाड़ी चल चुकी है अतः वह महिला अपने भाग्य को धिक्कारते हुए वहीं लाहिरी जी का स्मरण कर रोने लगी। कुछ ही क्षण बाद उसने देखा कि प्लेटफार्म से कुछ दूर जाकर गाड़ी रुक गई। ड्राइवर को गाड़ी के एकाएक रुक जाने का कारण मालूम न हो सका। महिला दौड़कर गाड़ी के एक डिब्बे में बैठ गई और उसके गाड़ी में प्रवेश के साथ ही गाड़ी चल दी। काशी पहुंचकर जब वह गुरुदेव को प्रणाम करने पहुंची तो लाहिरीजी कहने लगे, "तुम लोग मुझे कितना परेशान करती हो। गाड़ी पकड़ने के लिए तो कुछ समय पूर्व ही स्टेशन पहुंच जाना चाहिये।"

जिस समय योगिराज लाहिरीजी योग की उच्चतम स्थिति पर आरूढ़ थे उसी समय काशीमें योगिराज तैलंगस्वामीजी के योगैश्वर्य की बड़ी ख्याति थी। एक दिन लाहिरी जी

दूसरे, योगी पहिले अपने कुछ साथियों के साथ तैलंग स्वामीजी के दर्शनार्थ पहुँचे। लाहिरीजी को दूर से ही अपनी ओर देख तैलंगजी उठकर खड़े हो गये और समीप आने पर उन्होंने लाहिरीजी को अपने विशाल वक्षःस्थल से लगा लिया। लाहिरीजी कुछ देर तक स्वामीजी के पास रहे और फिर श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर चले गये। लाहिरीजी के चले जाने पर स्वामी जी प्रशान्त स्वर में अपने समीप बैठे हुए भक्तजनों से कहने लगे "योग साधना की जिस उच्चा-वस्था को हासिल करने के लिए साधकों को लंगोट तक छोड़ देनी होती है, उसी परम पद को इस महान साधक ने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही गुरुकृपा से सहज ही में प्राप्त कर लिया है।"

लाहिरीजी के संसर्ग से कितने ही प्राणियों को तत्काल आध्यात्मिक रूपान्तर हो गया था। उनकी धर्म पत्नीजी से उनके योगैश्वर्य की कितनी ही अलौकिक लीलायें सुनने को मिला करती। एक दिन अर्ध-रात्रि में उनकी पत्नी की आँखें खुल गईं, उन्होंने देखा कि लाहिरीजी भूमि से उठकर शून्य में पद्मासित हैं और कमरा एक उज्ज्वल प्रकाश से देदीप्य-मान हो गया है। यह देख पत्नी स्तम्भित रह गई। सोचने लगी, क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रही। कुछ ही क्षणों में लाहिरी जी पत्नी की ओर देखते हुए गम्भीर स्वर में बोले, "यह कोई स्वप्न नहीं देवी! अब तुम तामसी निद्रा से चिरकाल के लिए जाग्रत हो जाओ।" धीरे-धीरे लाहिरीजी भूमि पर उतर आये, पत्नी ने पतिदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। लाहिरीजी ने उन्हें योगदीक्षा प्रदान कर कृतार्थ किया।

एक बार की बात है, लाहिरी जी के शिष्यों ने मिलकर एक फोटोग्राफर को बुल-वाया और योगिराज जी से फोटो खिंचवाने की प्रार्थना की। फोटोग्राफर ने कई फोटो लीये, परन्तु उन सभी में से लाहिरी जी की छवि अदृश्य थी। पुनः जब फोटोग्राफर के प्रयास करने पर भी लाहिरी जी की छवि कैमरे में प्रतिफलित न हो सकी तब वह लाहिरी जी के चरण पकड़कर उनकी एक तस्वीर के लिये विनती करने लगा। अबकी बार लाहिरी जी 'तथास्तु' कह फोटो खिंचवाने बैठ गये। इस बार उनकी छवि कैमरे में प्रतिफलित हो गई। आज भी जहाँ कहीं लाहिरी का जो चित्र मिलता है वह उसी एक चित्र की नकलें हैं।

लाहिरी जी आसन, मुद्रा, प्राणायाम एवं धारणा, ध्यान आदि गुप्त यौगिक क्रियाओं का उपदेश अपने शिष्यों को सर्वदा किया करते। वे स्वयं इन्द्रियातीत राज्य में विचरण करते एवं अपने शिष्यों को सभी रहस्यों का उद्घाटन करने में तत्पर रहते। योगिराज ने योग साधना में कभी भी किसी साधक को

लौकिक कर्म से च्युत होने को नहीं कहा और सदैव उन्हें स्वधर्म पालन का ही उपदेश देते रहते। प्रायः देखा जाता कि लाहिरी जी के समीप यदि कोई गृहस्थ शिष्य जब साधन मार्ग में लौकिक कर्मों की विघ्न-बाधा के बारे में चर्चा करता तो वे हँस कर टाल देते और विभिन्न प्रकार की असुविधाओं को मानने को तैयार न होते।

योगिराज के महाप्रयाण का समय जब निकट आ गया तो उन्होंने अपने निकटतम शिष्यों से कहा कि "मेरे शरीर त्याग का समय अब निकट ही है, तुम शोक नहीं करना"। लाहिरी जी के एक शिष्य पंचानन काशी से बाहर रहते थे, उन्हें जब गुरुदेव के शरीर छोड़ने का समय ज्ञात हुआ तो वे चलने को उद्विग्न हो उठे। गुरुदेव वहाँ प्रकट हो कहने लगे "तुम्हारे पहुँचने से पहले मैं इस शरीर को छोड़ दूँगा अतः तुम मुझे न पा सकोगे"। गुरुदेव के श्री मुख से ऐसा सुनकर पंचानन अपने को न सँभाल सके और उनकी आँखों से वियोग दुःख से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। लाहिरी जी ने उसे अभय वरदान देते हुए कहा "तुम्हें भय किस बात का, मैं तो सदैव तुम्हारे साथ हूँ"। इस प्रकार उन्हें सान्त्वना प्रदान कर वे अदृश्य हो गये।

१८९५ ई० की २६ सितम्बर को शोकातुर शिष्यों की अश्रुपूर्ण दृष्टि के सम्मुख वे धीरे-धीरे पद्मासन लगाकर बैठ गये और समाधिमग्न हो योगी ने महाप्रयाण किया। ज्योतिर्मय लोक के उस पार से भी योगिराज को इस समय भी अपनी अलौकिक लीला का विस्तार करते देखा गया। एक ही समय में भारत के विभिन्न स्थानों में शिष्यों ने अपने गुरुदेव की दिव्य मूर्ति का साक्षात्कार किया। जीवन-मृत्यु के व्यवधान को दूर कर शक्ति पर महायोगीने अपने आत्मीय जनोंके समक्ष निजी दिव्य लीला से उन्हें विस्मित कर दिया।

योगिराज लाहिरीजी एक अपरिमेय शक्ति सम्पन्न पुरुष थे। ऐसे महापुरुषों से हमारी मातृ-भूमि एवं आध्यात्मिक जगत दोनों ही महिमामय है। उनकी यशः सुरभि भारत एवं विश्व के आध्यात्मिक जगत में युग-युगान्तर तक रहेगी। यह दिव्य-ज्योति भारतके सौभाग्य से ही प्रकट हुई थी। उनके सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाये वह बहुत कम है। 'प्रभु' से प्रार्थना है कि वे धर्म संस्थापनार्थ इस धरा पर पुनः अवतरित हों। अस्तु !

चौथा उपाय—

योग के विघ्न एवं उनके उपाय

[श्री गिरीश देव वर्मा]

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।

अर्थ :—अथवा दिव्य विषय वाली वृत्ति पैदा होकर मन की स्थिरता को बांधने वाली होती है।

भावार्थ

हमारे शरीर के अन्दर ऐसी-ऐसी अद्भुत शक्तियां भरी हुई हैं जिनको सुनकर साधारण मनुष्य चकित हो जाते हैं। योग साधन से ये शक्तियां विकसित हो जाती हैं। दिव्य विषयों वाली प्रवृत्ति उत्पन्न करने से दो लाभ होते हैं, प्रथम चित्त की स्थिरता होती है और दूसरे साधक को इस शास्त्र की बातों में श्रद्धा व विश्वास होने लगता है। यह दिव्य प्रवृत्तियां गन्ध, रूप, रस स्पर्श और शब्द वाली इन्द्रियों द्वारा पैदा की जाती हैं। नासिका के अग्र भाग पर चित्त एकाग्र करने से दिव्य गन्ध का अनुभव होने लगता है। जिह्वा के अग्र भाग में चित्त एकाग्र करने से दिव्य रस का अनुभव होता है। तालु में चित्त एकाग्र करने से दिव्य दृष्टि मिलती है। जिह्वा के मध्य भाग में चित्त लगाने से दिव्य स्पर्श तथा जिह्वा की जड़ में चित्त लगाने से दिव्य श्रवण होने लगता है। प्रारम्भ में चित्तको इन स्थानों में एकाग्रता करने में कठिनता मालूम होती है। अतएव क्रियात्मक साधन का आश्रय लेना चाहिये। जो विधि अनुभव में आई है उसको बताते हैं।

१. दिव्य गन्ध को प्राप्त करना—

शौच स्नानादि से निवृत्त होकर किसी एकान्त स्थान में सुखासन लगाकर बैठिये। पवित्रीकरण, आचमन, न्यास करके पांच प्राणायाम करना चाहिये। इसके बाद देशी कपूर को आधे मिनट तक इस प्रकार सूंघना चाहिये कि मन से नासिका में उस कपूर के गन्ध का निश्चय हो जावे और यह विचार करना चाहिये कि यह गन्ध नाक के भीतर की खाल में किस प्रकार स्पर्श करती है। लगभग आधे मिनट तक सूंघ कर कपूर को दूर हटा दें और दो मिनट तक मन को नासिका में रखते हुये उस गन्ध का स्मरण करें। जब कपूर के गन्ध का स्मरण न आवे तब पुनः कपूर को आधे मिनट तक सूंघ कर दो मिनट

तक स्मरण करना चाहिये। यह क्रिया आधे घण्टे तक दोनों समय करनी चाहिये। जब दो मिनट तक गन्ध की याद होने लगे तब एक बार सूँघ कर तीन मिनट तक याद करे। जब इतना अभ्यास बढ़ जावे तब पाँच मिनट तक गन्ध का स्मरण करे। धीरे-धीरे याद करने के समय को बढ़ाता जावे और इतना कर लेवे कि एक बार सूँघने में कपूर के गन्ध को याद आधे घण्टे तक आवे। इसके अनन्तर कपूर की आवश्यकता नहीं है। अब अभ्यास के समय दृष्टि को नासिकाग्र पर एकाग्र कर चित्त से गन्ध का अनुभव करे। प्रथम नाक के अगले भाग पर, फिर जड़ पर और अन्त में मस्तिष्क केन्द्र में जहाँ गन्ध की टक्कर लगती है, वहाँ मन को ले जावे और गन्ध का अनुभव करे। धीरे-धीरे कपूर की गन्ध की अपेक्षा रोचक और मन को भाने वाली गन्ध मालूम होगी। रोचकता दिन ब दिन बढ़ती जायगी और गन्ध भी दिव्य आने लगेगी। उसमें मधुरता का अनुभव होगा और कपूर से घृणा हो जावेगी।

इस गन्ध का अभ्यास ऐसा रुचिकर और प्रबल होगा कि अभ्यास से उठने को मन ही न करेगा और उठने पर भी घूमते-फिरते, खाते-पीते काम करते हुए घण्टों तक उसका संस्कार बना रहेगा। दुर्गन्धित स्थानों में भी आप दुर्गन्ध से व्यथित न हो सकेंगे, वरन् क्या सा चित्त को नासिकाग्र पर लेजाकर वहाँ दिव्य गन्ध का अनुभव होने लगेगा।

इस अभ्यास के स्थिर हो जाने पर जिह्वा के अग्र भाग पर कुछ मीठा रस का अनुभव होता है, किन्तु मन को उस तरफ नहीं ले जाना चाहिए क्योंकि वह आगे की भूमि है। इस अभ्यास को कपूर ही से नहीं अपितु इलायची, कायफल, तुलसी आदि से भी कर सकते हैं किन्तु फूलों की गन्ध तथा इतर त्याज्य है। गन्ध शुरू से आखिरी तक एक रखना चाहिए। दिव्य गन्धका अनुभव जल्दी से जल्दी २१ दिन में तथा अधिक से अधिक तीन मास में होने लगता है।

२. दिव्य रस को प्राप्त करना—

इसकी विधि यह है कि खाने में रुचिकर किसी मधुर और प्रिय फल को लेकर उसके पाँच-छः टुकड़े कर लीजिये। फिर अभ्यास के लिए बैठने पर आधे मिनट तक उस टुकड़े को जिह्वा के अग्र भाग पर रखिये और फिर उस रस को दो मिनट तक याद कीजिये। गन्धाभ्यास की तरह इसमें भी याद करने के समय को बढ़ाते रहना चाहिए। जब मन जिह्वाग्र पर आधा घण्टे तक उस रस का अनुभव करने लगे तब फल का आश्रय छोड़ देना चाहिए। और चित्त की एकाग्रता जिह्वाग्र पर करनी चाहिये। धीरे-धीरे उस रस से भी अधिक

सात्विक रस का अनुभव होने लगेगा और थोड़े दिन में दिव्य रस का अनुभव होगा।

इस अभ्यास के समयमें आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। भोजन बिलकुल सात्विक होना चाहिये और यदि दुग्धाहार कर सकें तो अति उत्तम है। समय भी एक रखना चाहिए। अभ्यास काल में फल भी एक ही प्रकार का रखना चाहिए।

३. दिव्य स्पर्श को प्राप्त करना—

मन को जिह्वा के मध्य भाग में रखकर वायुके स्पर्श का अभ्यास करें तथा किसी चिकने या मृदु कांच के गोले (पेपरवेट आदि) को वस्तु का हाथ आदि किसी अनुकूल अङ्ग से कपूर के अभ्यास की तरह स्पर्श का अभ्यास दृढ़ करें। धीरे-धीरे उस वस्तु का त्याग करदे और मन को जिह्वा के मध्य में स्थिर करके उस स्पर्श का अनुभव करें। पहले वायु जैसा स्पर्श होगा, फिर रोचकता बढ़ती जायगी और थोड़े दिन में दिव्य स्पर्श का अनुभव होगा।

४. दिव्य दृष्टि को प्राप्त करना—

किसी सुन्दर हरी पत्ती या गुलाब के फूल को सामने रखकर कपूर की तरह आधे मिनट तक आंखों से देखें और फिर नेत्र बंद करके दो मिनट तक याद करें। यह सब कुछ पूर्वोक्त रीति से करें। उस वस्तु का त्याग करने के बाद मन को भुवा के अन्दर तालु जहां कौआ लटकता है, वहां रखकर रूप का अभ्यास करना चाहिए। आरम्भ में अग्नि से भी सूक्ष्म विद्युत जैसा प्रतीत होगा। धीरे-धीरे बिजली भी सूक्ष्म रोचकतया शुभ्र रूप दिखाई पड़ेगी, तदुपरान्त दिव्य रूप का अनुभव होगा।

५. दिव्य श्रवण को प्राप्त करना—

किसी भी बाजे की एक रस ध्वनि यथा हारमोनियम के किसी सुरीले पर्दे की आवाज अथवा घड़ी की लगातार ध्वनि को कानों से कपूर की क्रियाके अनुसार संख्या व अन्तर को ध्यान में रखते हुए अभ्यास करें। फिर मनको जिह्वा के मूलमें रखकर सूक्ष्म आन्तरिक ध्वनि को सुने। धीरे-धीरे दिव्य श्रवण का अनुभव होगा।

इन अभ्यासों मेंसे किसी एक को सिद्ध कर लेने से मन की स्थिरता होने लगती है और बहुत से विघ्न दूर हो जाते हैं।

पांचवां उपाय अगले अंक में बतायेंगे।

ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी

के

ध्यानानुभव

[श्री सिद्ध गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई से प्राप्त]

श्री आनन्दकन्द परम कृपामय श्री प्रभु जी की शरण में आने के बाद श्री ब्रह्मचारी जी को ध्यानावस्था में जो-जो अनुभव हुए उनमें से यत्किंचित् नीचे दिये जाते हैं। निम्न-लिखित लेख श्री ब्रह्मचारीजी की हस्तलिखित कापी से श्री भाई नृसिंहमूर्ति जी द्वारा प्राप्त किया गया है व उन्हीं के अपने शब्दों में बिना किसी विशेष परिवर्तन के नीचे दिया जाता है।

जब सहारनपुर में मेरे एक मित्र हरिश्चंद्र के साथ जाने पर श्री प्रभु जी के मुझे दर्शन हुए तो प्रथम दर्शन के समय ही आपके करुण नेत्रों से उन्होंने मुझे मोहित कर लिया। मुझे ऐसी आशा कदापि नहीं थी क्योंकि पूर्व आश्रम के गुरु स्वामी जी ने मेरे हृदय में यह भाव ठूंस-ठूंसकर भर दिये थे कि ब्राह्मण पुत्र कोई भी विद्या अन्य जाति को नहीं दे सकता, किन्तु मुझको फिर भी विश्वास था, मैं चला आया। मुझसे हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि कहो ये कुछ जानते भी हैं? बातें भी ऐसी कहते हैं कि मानो अभी ईश्वर के दर्शन करा देंगे। मैंने कहा यह इस विषय के ज्ञाता तो अवश्य हैं, किन्तु 'ब्राह्मण' हैं। शायद इसके रहस्य को प्रकट न करें। उसने मुझसे कहा, तो उसकी परीक्षा कैसे हो? मैंने कहा सब परीक्षा हो जायेगी। दूसरे दिन मैं फिर गया, उस दिन श्री प्रभु जी ने और भी अधिक वात्सल्य भाव प्रकट किया। मेरे से प्रभु ने बड़े प्रेम से जल भरने को कहा। मेरा चित्त गद्‌गद् हो गया। मनमें निश्चय कर लिया कि यदि सत्य स्वरूप कोई हो सकता है, तो यही है, किन्तु ये उस स्वामी जी के शाप-ताप से मुझको मुक्त कर सकते हैं या नहीं। यह निश्चय कर लेने की आवश्यकता है।

उसी दिन शाम को पूर्व गुरु स्वामी जी के पास जाकर मैंने कहा कि एक महात्मा आया है। उनका मस्तक एक गोल गुम्बदाकार है। नेत्र करुणा रस से पूर्ण है। हास्य छवि, मृदु मुस्कान राम के चरित्र की याद दिलाती है। उनकी वाणी में क्रोध की छटा किंचित भी नहीं

है। आनन्द रस प्रत्येक शब्द से टपकता है। स्वामी ने कहा कि कौन साधन का योगी है और किसका वह शिष्य है? मैंने कहा कि यह मैंने नहीं पूछा कि वे किसके शिष्य हैं, किन्तु वे अष्टांगयोग के अतिरिक्त भी योग के सभी साधनों के ज्ञाता हैं। स्वामी जी ने कहा, जो अनेक मार्गों में फँसता है, वह योगी तथा मालिक का सच्चा भक्त नहीं हो सकता है। उन्होंने फिर यह पूछा कि कौन वर्ण है? मैंने कहा कि ब्राह्मण है। इस पर स्वामी जी ने कहा, यदि ब्राह्मण है तो निश्चय ही वह पाखण्डी है। ब्राह्मण का पुत्र इस समय कभी भी मालिक का भक्त नहीं हो सकता है और तू उसके पास न जाना। यदि गया तो इसका दण्ड पायेगा। मैं चुप हो गया। इन स्वामीजी की वृत्ति क्रोधमय रहती थी। इस कारण मेरा भाव इन पर नहीं रहता था। मैं ऐसे योगी की खोज में ही था कि अचानक इस प्रकार दैव प्रेरणा से श्री प्रभु के दर्शन हुए और उनके करुणा नेत्र हृदय में गड़ गये। मैंने मन में निश्चय कर लिया कि इनकी ही शरण में जाऊँगा। एक रोज मैं विचार में रहा और श्री प्रभु जी के पास नहीं गया। फिर मेरे मित्र हरिश्चन्द्र जी आये, उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या विचार है? मैंने कहा कि यदि प्रभु उन स्वामी जी के श्राप-ताप से मुझको निवारण कर सकते हों तो मैं उनकी शरण में आने को तैयार हूँ। दूसरे दिन हरिश्चन्द्र जी ने उत्तर दिया कि वे कहते हैं कि अब तक तो हमारे मनमें टालनेकी थी, किन्तु अब मैं तुमसे कहता हूँ कि उन्हें जल्दी लिवा लाओ। मैं दूसरे दिन कुछ पुष्प लेकर गया, श्री प्रभुजी ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और कहा कि जिस साधन में तुम लगे हो उसी में लगे रहना चाहते हो या और किसी योग में लगना चाहते हो। मैंने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि मैं उसी में लगे रहना चाहता हूँ। श्री प्रभुजी ने एक मिट्टीकी कंकड़ी उठाकर दी कि जिस समय भजन में बैठना हो उस समय मुख में डाल लेना। मैंने ऐसा ही किया। कंकड़ी मुख में डालते ही मुझे सूर्य के समान प्रकाशमय स्वरूप में श्री प्रभुजी के दर्शन भी होते रहे। मैंने कहा कि प्रभु जी यह क्या माया है? इतना कहना था कि श्री प्रभुजी की छवि ऊँची हो गई। फिर स्वामी जी की मूर्ति भी ऊँची हो गई। इसके पश्चात् प्रकाश न रहा। फिर जो प्रकाश हुआ उसमें दीप्तिमान स्वरूप में श्री प्रभु जी ही विराजमान थे।

ध्यानावस्था में श्री प्रभुजी के दर्शन व वरदान लाभ

मैंने वृत्तान्त श्री प्रभुजी से कहा। श्री प्रभु जी ने प्रसन्न होकर कहा कि मैं तुमको वर देता हूँ। प्रथम वर यह देता हूँ कि तुमको काम-वासना (बालक) न होगी। दूसरा वर यह

देता हूं कि सर्व जगत अपने स्वरूप में व प्रभु स्वरूप में दीखेगा। तीसरे तुमको इस प्रकार भास होगा कि तुम्हें हर समय आनन्द ही रहेगा। मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई। मैं यह चाहता भी था, क्योंकि इस वासना को दूर करने के लिए अनेक जप-तप किये थे, किन्तु वह बाधा दूर नहीं हुई थी। मेरा निश्चय भी यह था कि जो मेरे मन को काम-वासना को रहित कर देगा वही मुझको तार देगा। कुछ ही दिन बाद श्री प्रभु जी अन्तर्धान हो गये। एक दिन मैं रात्रि को सो रहा था कि स्वप्न हुआ। स्वप्न में मुझे एक रूपवती यौवन पूर्ण कन्या सोलह वर्ष की दिखाई दी और वह मेरे समीप नृत्य करती हुई आने लगी। जब वह आने लगी तो शरीर में काम-देव तेजस्वी होकर उपस्थ-इन्द्रिय दृढ़ हो गई। जब कन्या समीप में बैठने को हुई तो एक दम श्री प्रभुजी के दर्शन हुए और वह कन्या न रही। सामने श्री प्रभुजी विराजमान थे। मुझे आश्चर्य हुआ साथ ही लज्जा ने दबा लिया। श्री प्रभुजी ने मुझे धीरज देकर ध्यान-वृत्ति को स्थिर करने लगे। थोड़ी देर में वह कन्या सामने फिर से दीखने लगी।

श्री प्रभुजी ने उससे कहा कि अब यह मेरा पुत्र हो चुका है। तुमको इस पर अपना प्रभाव न रखना चाहिए। उसने कहा कि इसमें हमारी वासना है, क्यों नहीं हम भोगें। श्री प्रभुजी ने ओजस्वी वाणी में कहा कि तुमको तू भूल गयी, मेरा हाथ जिस पर होता है उस पर तुम्हें दृष्टि डालना उचित नहीं है। इतना जो श्री प्रभुजी ने कहा तो वह अन्तर्धान हो गयी। अन्तर्धान होते ही श्री प्रभुजी फिर मुझे आश्वासन देने लगे। कुछ ही क्षण बाद वह कन्या नवीन रूप शृंगार से सज्जित होकर फिर आने लगी। श्री प्रभुजी ने कहा कि खबरदार इधर बढ़ी, किन्तु वह कब सुनने वाली थी। मैंने प्रार्थना की कि प्रभो! यह तो आती ही जाती है। श्री प्रभुजी ने कहा कि घबराओ मत, यह कह कर आकाश की ओर तीन बार ताली बजाई, फिर क्या था, आकाश से अगणित सूर्यों के प्रकाश के समान चमकता हुआ, सुदर्शन चक्र घूमता हुआ आया व आते ही श्री प्रभुजी ने उसे गोदी में रखकर तर्जनी अंगुली से घुमाकर उस कन्या को मारा। उसके लगते ही उसका सिर कट गया व उसके शरीर से तीन सिर वाला राक्षस प्रकट हुआ। मैं उसको देखकर आश्चर्य में डूब गया और वह राक्षस आकाशगामी हो गया। श्री प्रभुजी ने मुझसे कहा कि अब यह काम तेरा तुमको नहीं सता सकती। उसके बाद मैंने यह आश्चर्य देखा कि मेरे प्रयत्न करने पर भी मेरे मन में काम-वासना का उदय बिल्कुल नहीं होता था। मुझे उस दिन से पूर्ण विश्वास श्री प्रभुजी पर हो गया और रात-दिन यह चिन्ता होने लगी कि मैं किसी प्रकार श्री प्रभुजी के साक्षात् दर्शन करके कृत-कृत्य होऊँगा। कुछ दिन बाद (पूर्व गुरु) स्वामी

भी गुरूड़ से आते। उनके आने से एक दिन पहले मेरे रोगी बिगड़ने लगे। वही औषधि वही रोगी, वही रोग, फिर पहले तो उनके लाभ था अब उन्हीं औषधियों से उनका रोग बढ़ गया। शहर में अपयश फैलने लगा। साथ ही भजन में (ध्यान में) स्वामी जी क्रोधावेश में आकर कहने लगे कि तूने दूसरों के कहने में आकर हमारे मार्ग को त्यागा है और ब्राह्मण का अनुगामी हुआ है। अब तेरे सब रोगी बिगड़ जायेंगे और तू दारिद्रय जीवन व्यतीत करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा। ऐसा प्रभाव जब प्रकट में मैंने देखा तब मेरा चित्त दहला गया। श्री प्रभुजी का स्मरण करते-करते मुझे धीरज हुआ। और जब स्वामी जी अगले दिन आये तो स्वामी जी मुझसे प्रत्यक्ष में कहते हैं कि हरिश्चन्द्र को अपने पास मत आने दे। और इधर-उधर न भटक, अन्यथा इसका परिणाम बुरा होगा। और, यह बात सुनकर तथा जो शाप दिया उसका अनुमान करके मैंने निश्चय किया कि अवश्य ही श्री प्रभुजी को लिखूंगा। उसी समय एक पत्र श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में लिख दिया। उसका उत्तर श्री प्रभुजी के चरण-कमलों से इस प्रकार मिला—चिरंजीव ! जो कैलाश छोड़कर व गणपति, गौरी को त्याग कर हर समय तुम्हारे साथ रहती है इतने पर भी तुम नाश का चिन्तन करते हो। अब तुम्हारे पास हमारा यह पत्र पहुँचेगा। तब उसी समय से औषधियों में चौगुनी शक्ति हो जायेगी, और रोगी सब सम्हल जायेंगे। उस पत्र का फल वैसा ही हुआ। रोगी फिर लौट कर आने लगे तथा सब व्यवस्था पहले से भी अच्छी हो गयी। इधर श्री प्रभुजी ने कहा कि घबरा मत। मैं तुमको शीघ्र ही अपनी गोद में साक्षात् स्वरूप से रखूंगा। इस वाक्य का व्यवहार रूप में अर्थ न समझ सका और श्री प्रभु जी को उत्तर यथावत् दे दिया। कुछ दिन बाद श्री प्रभु जी ने मुझे एक रोगी के इलाज के लिए अमृतसर बुलवा लिया तथा श्री चरणों में पहुँचते ही वह प्रेम का हाथ सिर पर रखा कि मेरी सब चिन्तायें ऐसी उड़ गयी जैसे कि अग्नि से कपूर उड़ जाता है।

ध्यान योग से निद्रा को रोकने के उपाय

जब से मैं श्री प्रभु जी के चरण-कमलों में आया तथा श्री दीनबन्धु जी ने जब से अपना कर-कमल मेरे सिर पर रखा उसी दिन से श्री प्रभुजी के दर्शन मुझे सूर्य भगवान की छवि में बराबर होते रहे। सूर्य की किरणें तेजोमयी चकरात् घूमती थीं; श्री प्रभु जी की मुस्कराहट उत्साहको बढ़ाती थी। एक दिन कुछ देर बाद ध्यान में निद्रा आने लगी व निद्रा से अचेत हो गया। अनेक बार मन को धिक्कारा किन्तु निद्रा का उपद्रव शान्त न हुआ। एक दिन मैं बहिन कुलवन्ती के पास गया और पूछा कि

तुम किस प्रकार निद्रासे अलग होकर भजन में मग्न होती हो। मुझे निद्रा अधिक सताती है। बहन जी ने उत्तर सन्तोषजनक नहीं दिया। उसी दिन मैंने निश्चय किया कि आज श्री प्रभु जी से प्रार्थना करूँगा। फिर मैं भजन के समय दिन के लगभग दो बजे ध्यान में बैठा तो पुनः श्री प्रभुजी के दर्शन हुए। श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! निद्रा का उपद्रव दूर करने का साधन कृपा कर बतलावें तथा बहिन कुलवन्ती जी किस प्रकार चित्त-वृत्ति को लय करती हैं। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि यह मामूली बड़ी बात है जो उससे पूछने गया। जब मैं तेरे पास हर समय रहता हूँ तो कोई बात किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। अब ध्यान देकर सुन। मेरी कृपा प्रणव मन्त्र को हृदय में ध्यान देकर सुनो। प्रभु का ध्यान भी वहीं करो। ध्यान के स्थिर होने पर हृदय-कमल संकुचित नहीं होता। हृदय-कमल के संकुचित होने पर निद्रा आती है। ऐसा करने से निद्रा नहीं आयेगी। यही ध्यान कुलवन्ती करती है। फिर ऐसा करने से उसी दिन से निद्रा का उपद्रव बिल्कुल शान्त हो गया।

भैरव सिद्ध महात्मा को दण्ड व वैरागी महात्मा बालकृष्णदास का मिलन

श्री ब्रह्मचारी जी के मन में भगवद्भक्ति के साथ गुरु भक्ति भी परिपूर्ण थी। उनके मन में सद्गुरु और ईश्वर एक ही तत्व के दो भिन्न नाम थे। परम कल्याणप्रद श्री प्रभु जी ने उनको प्रेम परिपूर्ण बना दिया था, वह सद्गुरु देव योग-योगेश्वर श्री प्रभु जी के कृपामय चरण-कमलों पर न्योछावर रहते थे। गुरुनिन्दा सुनना उनके लिए असह्य था। एक बार हिमालय से लौटकर आने के बाद श्री प्रभु जी अमृतसर में निवास कर रहे थे। सत्संग में आने जाने नर-नारियों की भीड़ हर समय बनी रहती थी। जो ईर्षालु लोगों के लिए असह्य थी। वे लोग इस प्रतीक्षा में रहते थे कि कोई ऊँचे सिद्ध महात्मा कहीं से आवें व वे लोग उनके द्वारा श्री प्रभु जी को नीचा दिखला सकें। अमृतसर बहुत पुराना नगर है, प्रायः विचरते हुए सन्त महात्मा आते-जाते रहते हैं। कुछ समय बाद अकस्मात् कोई महात्मा वहाँ आ निकले, जिन्होंने बड़े प्रयत्न के साथ श्री भैरव जी को सिद्ध किया था। उनकी चमत्कारियों को सुनकर उपरोक्त ईर्षालु लोगों को बड़ा उत्साह हुआ व वे लोग उस भैरवसिद्ध महात्मा को साथ लेकर श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में आये। उन लोगोंने महात्मा को काफी प्रलोभन में फँसा दिया था, बेचारे महात्मा नहीं सोच सके कि होनहार क्या? व मैं कहाँ जा रहा हूँ? सहसा श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में पहुँचकर वह कटु भाषण करने लगे और कहा कि यदि तुम योगिराज हो तो कोई चमत्कार दिखलाओ, अन्यथा यह आडम्बर क्यों रचाया है।

श्री प्रभुजी बड़ी गम्भीरता से उसकी बातों को सुनते रहे। वह करुणार्णव यह सोचते थे कि कुछ काल में यह स्वयं चुप हो जायेगा। किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी से यह सहन नहीं हुआ। श्री ब्रह्मचारी जी उस समय श्री प्रभुजी की चरण सेवा में वहां उपस्थित थे। श्री ब्रह्मचारी जी ने पास में बैठी हुई एक अष्ट वर्षीय बालिका की ओर संकेत करते हुए उस अभिमानी महात्मासे कहा। कि अरे तुच्छ महात्मा! उन कृपानिधि को तू क्या देखेगा। इस बालिका की ओर देख। यह आदिशक्ति तुम्हें सब कुछ दिखायेगी व तेरे अन्तर्गत भावनाका फल देगी। अकस्मात् श्री ब्रह्मचारी जी की ओजस्वी वाणी को सुनकर महात्मा ने विस्मित होकर उस बालिका की ओर देखा, वह अष्ट भुजी आदि महाशक्ति दुर्गा दिखलाई दी। महात्मा का बड़े प्रयत्नों से सिद्ध किया हुआ भैरव उसको छोड़ अपनी माता की गोद में जा बैठा व माता से आज्ञा पाकर त्रिशूल उठाकर उसी महात्मा को दण्डित करने को दौड़ पड़ा। महात्मा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने बातें करते श्री प्रभुजी की विनती की। बार-बार क्षमा याचना की। श्री प्रभुजी ने उसकी दीनता को देखकर उसे क्षमा कर दिया। उसका इष्ट भैरव उसको दे दिया व अमृतसर से बाहर जाकर कहीं एकान्त में जाकर तप करने की आज्ञा देकर उसे भेज दिया। उसके साथ में आने वाले ईर्ष्यालु लोग भी अपना सा मुँह लेकर चले गये। इसके पश्चात् प्रभुजी ने ब्रह्मचारी जी को भी मौन रहकर एकान्त भ्रमणकी आज्ञा दी। ब्रह्मचारी जी प्रभुजी के कृपामय चरण-कमलों को छोड़ कर कहीं एकान्त में जाना पसन्द नहीं करते थे, किन्तु प्रभुजी ने उन्हें एक विशेष कारण समझाते हुए कहा कि—बेटा! इस समय तुम मौन होकर कहीं एकान्त में चले जाओ, कोई उन्नत आत्मा आना चाहता है, वह तुम्हारे द्वारा आयेगा। तुम मौन होकर चले जाते, इस स्थिति में जाते हुए को तुम्हें बुलायेगा व भोजन आदि आदर पूर्वक करायेगा, वह हमारा परम भक्त होगा। प्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर ब्रह्मचारी जी चले गये व ज्यों ही वह अमृतसर से बाहर निकले तो देखा कि एक विरक्त वैष्णव महात्माओं की जमात पड़ी है। ब्रह्मचारी जी आगे बढ़े। विरक्त महात्मा बालकृष्ण दास ने इनको देखा व आदर पूर्वक अपने पास बुलाकर बैठाया, भोजन आदि कराया व पूछा कि तुम किसके शिष्य हो। हर समय मग्न रहते हो, यह क्या शक्ति है? ब्रह्मचारी जी ने आनन्दकन्द परम करुणार्णव योग योगेश्वर प्रभुजी का परिचय दिया। प्रभुजी के महान परिचय को पाते ही बालकृष्ण दास जी ब्रह्मचारी जी के साथ ही कृपानिधि जी के चरणारविन्दों में आ गये व शरण-दारण ग्रहण कर अपने आपको कृतार्थ किया। वैरागी महात्मा बालकृष्ण दास जी

कटक के वह मठ के महन्त थे। प्रभुजी की शरण-चरण हो जाने के बाद उनका जीवन भी योगमय बन गया। वह सब प्रकार से कृतार्थ हो गये।

जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन

श्री ब्रह्मचारी जी जिस समय कलकत्ते में आयुर्वेदिक परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे उस समय अध्ययन के साथ-साथ उनके मन में यह भी उत्कण्ठा बनी रहती थी कि उन्हें जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन हों और अपनी अभीष्ट सिद्धि का कोई आशीर्वाद प्राप्त करें। किन्तु १८ दिन की कठिन तपश्चर्या और कठिन व्रत के बाद भी जगदम्बा के दर्शन उन्हें प्राप्त नहीं हुए। उन्होंने मन में विचारा कि यह सब भ्रान्ति की बातें हैं। इस प्रकार दर्शन कहाँ किसको होता है? किन्तु समय आया जब ब्रह्मचारी जी ने प्रभुजी के चरण-कमलों का प्रसाद ग्रहण किया और कलकत्ते में १८ दिन घोर अनशन व्रत के बाद भी जिनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, आज वही महामाया कालिका अनायास प्रकट हुईं। वे ब्रह्मचारी जी के सामने आकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्री ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश से ८ मील ऊपर ब्रह्मपुरी के जंगल में समाधिस्थ थे। समाधि से उनकी आँखें खुलीं और अकस्मात् सिंहवाहिनी जगदम्बा को सामने खड़ी देखा। उन्होंने अत्यन्त विनय से जगत-जननी को प्रणाम किया। जगदम्बा ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। श्री ब्रह्मचारी जी ने हाथ जोड़कर विनय की कि हे जगदम्बे! वर माँगने से पूर्व मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस समय घोर अनशन व्रत करके भी मुझे आपके दर्शन प्राप्त क्यों नहीं हुए और आज जबकि मेरे मन में कोई विचार भी नहीं था, आपके दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। माता ने प्रसन्न होकर कहा—बेटा उस समय तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। मैं तुम्हारे पास रहती थी, किन्तु तुम मुझे देख नहीं सकते थे। अब पूर्ण सद्गुरु की कृपा से तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो चुका है। इसलिए तुम्हें मेरे दर्शन हो रहे हैं। अब तुम जो कुछ चाहो वह माँग सकते हो। ब्रह्मचारीजी ने विनयपूर्वक कहा—जगदम्बे! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे इस योग के कल्याणकारी मार्ग का दर्शन कराने वाले उन्हीं सद्गुरु देव की पूर्ण भक्ति दे दो, जिससे उनकी परम कृपा मेरे ऊपर सदैव बनी रहे और जीवन का उत्थान होता जाय। माता ने प्रसन्न होकर कहा—बेटा यह वस्तु तो उनकी कृपा से ही तुम्हें प्राप्त होगी, कोई और वर माँगो। धन, पुत्र, स्त्री दुनिया में मान-सम्मान जो भी तुम चाहते हो मैं तुम्हें दे दूँगा। ब्रह्मचारी जी ने कहा—माता आपकी कृपा बनी रहे। जगदम्बा तथास्तु कहकर वहाँ तेजी के साथ चली गयीं। ब्रह्मचारीजी ध्यान से उठकर कृपामय श्री प्रभु जी के चरण-कमलों में आ गये और सम्पूर्ण घटना श्री प्रभु जी के चरण-कमलों में निवेदन कर दी।

×××

मैं कौन हूँ

[श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा]

श्री वर्मा जी हिन्दी संसार के चिर-परिचित लेखकों में से हैं। आपका यह लेख पाठकोंको आत्म-निरीक्षणकी नई दिशा प्रदान करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

—सम्पादक

मैं कौन हूँ—यह मैं नहीं जानता। मैं संसार की प्रायः सभी जानने योग्य बातों से परिचित हूँ। मैं हाइड्रोजन-बमसे लेकर सुईकी नोकतक पहचानता हूँ; विश्वके धुरन्धर लोगों से मेरी बड़ी आत्मीयता है। महात्मा गांधी मुझसे घण्टों बातें करते थे। पं० जवाहरलाल नेहरूजी पत्रोंके ढेर मेरी मेज पर हैं। उस दिन स्तालिन ने मुझसे अपने मनकी बातें कह डालीं। मुसोलिनी मुझसे कई बार मिलने आये थे। हिटलर तो मेरे मित्र ही थे, मैं कई बार प्रधान मन्त्री के पदको अपना चुका हूँ, ठुकरा चुका हूँ और फिर भी अपना सकता हूँ।

मैंने कपिल तथा कणाद, सुकरात तथा अरस्तू, शोपनहार तथा कैसर काण्ट, रवीन्द्र तथा विनोबाके ग्रन्थ मथ डाले हैं। अपने विद्यार्थियोंको घंटोतक भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनपर उपदेश देता हूँ; बड़ी-बड़ी सभाओं में जब मेरा धार्मिक उपदेश होता है, लोगोंके नेत्रोंसे अश्रु की गंगा उमड़ पड़ती है। मेरे चरणों पर लोटने वालोंकी संख्या अनगिनत है; जिस रास्ते मैं निकल जाता हूँ, लोग गर्दनें उभार-उभारकर मेरी ओर देखते हैं। मुझे जब यह लगता है कि कितनी आँखें मेरी ओर लगी हुई हैं, उठी हुई हैं, तब मुझे बड़ा गर्व अनुभव होता है, मेरा अहंभाव मेरी छाती फुला देता है।

शासन में मेरा बड़ा ऊँचा स्थान है, रात ने रास्ता छोड़ा नहीं कि मेरे द्वार पर प्रणय, सहानुभूति तथा उपकार के भिखारियों की टोली तथा गैर-सरकारी चाटुकारों की पलटन मुस्तैद खड़ी मिलती है। जब एक साधारण कांस्टेबल भी मुझे देखकर दोनों पैर मिलाकर सलाम 'दागता' है, तब मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

कोई कह रहा था कि सबेरे तड़के, जाड़ेमें ठिठुरते-सिसकते भी सरकारी कर्मचारी मेरे स्वागतमें स्टेशन पर आते हैं और मुझे देखकर बनावटी खिन्नता से सिर झुका लेते हैं, वे बिस्तर छोड़ते समय अपनी पत्नीसे जिस भाषा में मेरे सम्बन्धमें चर्चा करते हैं, वह सुनने योग्य नहीं होती; मुझसे मिलने वाले जब आशाभरी थाली लेकर आते हैं और मेरे चरणोंपर अपनी आशा उड़ेल कर खाली हाथ जाते हैं उस समय जिन मीठे शब्दों में मुझे कोसते हुए जाते हैं इसकी मुझे प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है। जब मेरा कोई मित्र ऐसी बातों का उल्लेख करता है, तब इच्छा होती है कि उसका मुँह नोच लूँ। मैं ऐसी ऐसी बातें सुनना भी नहीं

चाहता। मुझे ऐसा लगता है कि जो मेरे पास आते हैं, सभी मेरे मित्र हैं। जो मेरे पास से जाता है, वह मेरे व्यक्तित्व से प्रभावित जाता है, चाटुकारिताने मुझे ऐसा अन्धा बना दिया है कि मुझे स्वभावतः अपनी आलोचना, निन्दा या बदनामी बुरी लगती है। हमारे सच्चेमित्र कुछ खरी-खरी बातें कह देते हैं, इसलिए मुझे वे भी नहीं अच्छे लगते; मैं अपने पद तथा मर्यादाओं, मान तथा आडम्बर में चूर हूँ। यदि कोई मेरे इस किले में दरार पैदा करना चाहता है तो वह मेरा मित्र नहीं हो सकता।

और इन्हीं भावनाओंको गठरी लपेटे जब मैं जमीन के कुछ ऊपर-ही-ऊपर पैर रखता हुआ डाकबँगले के उस कमरे में, जिसमें घोर अन्धकार था, बिजली की बत्ती जलानेके लिए स्विच की ओर हाथ बढ़ा रहा था, मुझे ऐसा लगा कि कोई भीमकाय मनुष्य मेरी ओर अपनी डरावनी आँखें फैला कर पूछ रहा है—

'तुम कौन हो ?'

वर्षों से ऐसा प्रश्न किसी ने मुझसे नहीं किया था। दस वर्षसे अधिक हुए होंगे कि मुझ से कभी पूछा होगा—'आप कौन है ?' पर यह 'तुम कौन हो' तो एक नया, एकदम चकपका देने वाला अनुभव था। ऐसा कौन है, जो मुझे नहीं जानता हो ? क्या मुझको न जानने वाले भी इस संसार में है।

अस्तु, प्रश्न की विचित्रता तथा उस डरावने डील-डौलने मुझे घबरा दिया। मेरा हाथ कसी की तरह स्विचके के बजाय पंखे के नंगे प्लग पर पड़ गया और फिर तो उँगलियों ने प्लग की सुराखमें पैठते ही ऐसा झटका खाया कि मेरा सारा शरीर सिहर उठा, झनझना उठा, हाथ-पैर ढीले हो गये और मैं धड़ाम से गिर पड़ा।

मैं गिर पड़ा—पर वह डरावनी सूरत अपना प्रश्न बार-बार दुहरा रही थी—तुम कौन हो ?

स्यात् मेरे गिरनेसे कुछ आवाज हुई होगी मेरा अर्दली भागता हुआ आया, बत्ती जली, प्रकाश बिखर पड़ा—मैं भी सँभला; पर मेरे कान में भरे हुए वे शब्द बार-बार गूँज रहे थे—तुम कौन हो ?

(२)

फिर वह सूरत कभी न दिखायी पड़ी। पर उसका प्रश्न जैसे चिरंतन है, स्थायी है और मुझे निरुत्तर कर देनेवाला है। मैं इतना बड़ा आदमी अपने को संसार में सबसे महान् समझने वाला व्यक्ति, क्या इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता—तुम कौन हो ?

मैं कौन हूँ ? क्या मेरा नाम, मेरा व्यवसाय, मेरा पद, मेरा धन, मेरा यौवन, मेरा रूप—यह सब मेरा परिचय देनेके लिए पर्याप्त नहीं है। पर सब कुछ उत्तर देने पर भी मैं

जब कभी बिस्तरे पर अपनी दिनचर्या लपेटकर सोने जाता हूँ, जब कभी मैं केवल स्वयं ही अपने पास रहता हूँ, मेरा मन इसी प्रश्न और उसके उत्तर में उलझ जाता है—मैं कौन हूँ? सब कुछ जानने वाला, ऊँचे से ऊँचे चढ़ जाने वाला यदि नहीं जानता तो केवल यह कि मैं कौन हूँ? शास्त्र तो कहता है कि बार-बार सोचते रहा करो—'मैं कौन हूँ?' पर हम सब कुछ सोच सकते हैं, यही नहीं सोचते और न सोच पाते हैं।

सीधा-सा जवाब दे दूँ कि मैं मनुष्य हूँ—पर ऐसा कोई मनुष्य पैदा ही नहीं हुआ, जो मानव-शरीर धारणकर नष्ट न हुआ हो, जिसका चोला धूल में न मिल गया हो। मिठाई इस लिये मिठाई है कि वह मीठी होती है। मनुष्य इसलिये मनुष्य है कि वह नष्ट होता है। किसी वस्तु का पूरा परिचय उसके आदि और अन्त को मिलाकर होता है। मैं मनुष्य हूँ, इसलिये मैं धूल हूँ, राख हूँ। इसलिये मेरा जो कुछ भी ठाट-बाट है वह नष्ट होने वाला है। यानी सब मिथ्या है। तब क्या मैं स्वयं एक महान् मिथ्या हूँ, झूठ हूँ, असत्य हूँ? क्या मैं इतनी बड़ी विडम्बना हूँ?

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। देखने में मैं इतना महान् होकर क्या इतना हेय हूँ? मैं अपनी इस व्याख्या से सन्तुष्ट नहीं हूँ, किसी ने मुझे स्मरण दिला दिया कि पक्षी का बच्चा माता की जिस चोंच से भोजन पाकर पोषा जाता है, उसी चोंचको अपनी चोंचसे एक दाने तक के लिए मारता है—इसलिये कि मायाका पर्दा बीच में पड़ गया है। क्या मैं भी जो कुछ देख-सुन रहा हूँ, मेरे सम्पर्कमें जो कोई भी है। मेरे साथी-संघाती जो भी हैं, सब माया का पर्दामात्र है। क्या यह प्रेम, यह सम्मान, यह वैभव—सब मिथ्या। मिथ्या किसे कहते हैं? अभाव में भाव नहीं होता, मिथ्याकी भी सत्ता है। मैं हूँ, यह भी सत्य है; मिथ्या हूँ, यह भी सत्य है; मिथ्या भी सत्य है, इसलिए मिथ्या होते हुए भी मैं हूँ, कुछ हूँ अवश्य।

(३)

अथर्ववेद कहता है—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' हम भूमि-माता के पुत्र हैं, पर भूमि को हम हिन्दू वाराह-भगवान् की पत्नी मानते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे सूर्य से निकला एक खौलता प्रदग्ध पिण्ड मानते हैं। दोनों ही दशाओं में यह सृष्टि की मौलिक रचना नहीं है—पीछे की गढ़न है, हम भी बाद की गढ़न हैं; प्रारम्भ में तो 'ॐ ह्येतदग्र आसीदिदं सर्वम्, सत्योऽव्याख्यानम्' ही था, इसलिये आज हम अपने को इतना विशाल क्यों समझ लेते हैं।

पर मेरा यह सोचना भी ठीक है। मैं परब्रह्म हूँ—उसी का अंश हूँ, संसार का सब कुछ मेरा ही रूप है। अतएव मेरी अन्तरात्मा अपने को सब कुछ समझती है। पर क्या मैं अपने को उसी रूप में सबसे महान् समझता

है ? बात तो ऐसी लगती है कि इसने सोचना शुरू किया था। सर्वव्यापी के रूपमें, पर माया का पर्दा हमें आगे दूर तक सोचने-देखने-समझने नहीं देता। हम अपनी ही सीमा में घिर गये; यदि मैं अपनेको ब्रह्मरूप देखता तो नाम-मर्यादा में उलझ न जाता। मैं अपने को महान् समझने के साथ ही सबको महान् समझता। अपने को ही बड़ा तथा अन्येतर को लघु न समझता। पर मैं तो ऐसा हूँ कि अपने को ईश्वर तथा सबको अपना भक्त बनाना चाहता हूँ।

शिकायत हो सकती है कि मुझसे मांग भी तो बड़ी लम्बी की जाती है। मैं उसको पूरी नहीं कर सकता, इसलिये लोग मुझसे प्रसन्न नहीं रहते। आज का संसार न जाने क्या-क्या चाहता है। श्री मेरुतुङ्गाचार्य ने आज के युग के मन्त्री से यह मांग की है—

अकरात् कुरुते कोषमवधात् देशरक्षणम् ।
देशवृद्धिमयुद्धाच्च स मंत्री बुद्धिमांश्च सः ॥

'बिना कर लगाये राजा का कोष भर दे, बिना वध किये देश की रक्षा करे, बिना युद्धके राज्यका विस्तार करे, वही मंत्री बुद्धिमान् है।'

पर क्या आज के वैज्ञानिक युग में यह सम्भव है ? राम को भी रावण का वध करना पड़ा था। तब हम क्या करें कि हमसे लोग अप्रसन्न भी न हों, काम भी हो।

मैं सोचता हूँ कि मैं सब कुछ ठीक से कर सकता हूँ—यदि मैं इतना ही समझ जाऊं कि मैं कौन हूँ। मैं उस डरावनी सूरत वाली मृत्यु के प्रश्न का उत्तर दे सकूं कि तू कौन है ?

मैं वह हूँ जो भगवान के विराट रूप में उनके मुखमें विलीन होने के लिए बढ़ रहा हूँ। मैं वह हूँ, जो मरने के लिए प्रतिक्षण पैर बढ़ा रहा हूँ। मैं वह हूँ, जो प्रकृति के एक हुंकार में मसल दिया जाऊंगा। मैं वह हूँ, जो विज्ञान के समूचे अस्त्र लेकर भी अपना संहार नहीं रोक सकता। जिसके एक नरेश ने अपने को अमर बनाने के लिए हजारों नवजात शिशुओं को समुद्र में फेंक देने का यज्ञ किया था और उसकी समाप्ति तक वह भी समाप्त हो गया। 'कालो न यातो वयमेव यातः।' इसको अपना बिस्तरा लपेटना ही होगा। मैं वास्तव में कुछ नहीं हूँ—झूठे आडम्बरों में पीसा एक कीड़ा हूँ, जिसे कालचक्र पीस देगा। जब स्वयं पिस जाना है, तब चार दिनों के जीवन में दूसरोंको पीसने से क्या लाभ ? यह ठाट क्या होगा !

सब ठाट पड़ा रह जायेगा,
जब लाद चलेगा बनजारा ?

तो फिर, ऐ कर्त्ता मैं ! छोड़ अपने अहंकार को। नियति सब कुछ करा रही है। तू क्या करता है, कुछ नहीं।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।

छोड़ अपना अहङ्कार। जो उचित हो, वह करले और उस दिन को सोच, जिस दिन न तू रहेगा न तेरा सम्मान। व्यर्थकी डींग हांकना, बकवास करना बन्द कर; ऊपर देख, मृत्यु तुझे बुला रही है। जन्म तथा मृत्यु के स्वामी भगवान को चिन्ता कर, इस माया मोह में कुछ नहीं धरा है—फिर सोच ले तू कौन है। फिर सोच लूँ—मैं कौन हूँ ?

जिस पर कृपा दृष्टि हो जाती

[श्री रामसजीवनसिंह, प्रयाग]

योगेश्वर प्रभु रामलाल की जिस पर कृपा दृष्टि हो जाती ।
पाप क्षीण हो जाते उसके योग मार्ग में रुचि हो जाती ॥
विश्व तमाशा उसे न भाता अन्तर्मुखी वृत्ति हो जाती ।
मोक्ष प्राप्ति की प्रबल भावना उसके मन में है जग जाती ॥

दूर श्रवण स्पर्श दूर का दिव्य दृष्टि उसको मिल जाती ।
दिव्य गन्ध बहुतेरे मिलते घ्राण-शक्ति इतनी बढ़ जाती ॥
दिव्य रसों के रस लेने में रसना बिलकुल रत हो जाती ।
स्वादयुक्त भोजन की इच्छा नहीं तनिक भी है रह जाती ॥

हठ योगी की कठिन क्रियाएं उसको सहज सुलभ हो जाती ।
वाणी सत्य सत्य कहती है मिथ्या बात कही ना जाती ॥
सद् विचार मन में आ जाते बुद्धी ऋतम्भरा हो जाती ।
पतन नहीं हो पाता उसका स्थिति ऊँची बनती जाती ॥

बैठ गुफा के अन्दर ध्यानी ज्योंही अपना ध्यान लगाते ।
हो जाती अनुभूति शीघ्र साधक सिद्धों के दर्शन पाते ॥
मन्द मन्द मुस्काते प्रभु जी स्वयं भक्त के सम्मुख आते ।
अब आगे क्या करना उसको सारी बातें खुद समझाते ॥

जीवन तत्व क्रियाएं करके मरते रोगी हैं जी जाते ।
यह तो महाप्रसाद प्रभु का इसकी महिमा हम सब गाते ॥
सिद्ध-गुफा की रज खाने से सारे रोग दूर हो जाते ।
कितने ही रोगी निज मुख से उस रज की महिमा बतलाते ॥

जिसके रक्षक बन जाते हैं दाल काल की ना गल पाती ।
लक्ष्य प्राप्त कर लेता अपना नहीं कामनाएं रह जाती ॥
आनन्द सिन्धु में डूबा रहता आठों सिद्धि उसे मिल जाती ।
परम प्रकाशक ज्योति प्रभु की उसको है प्रत्यक्ष लखाती ॥

योग-साधना में—

धारणा का स्थान और महत्त्व

[ब्रह्मचारी श्री आशादास, आगरा]

अनेक साधना के उपायों में धारणा का महत्व उल्लेखनीय है। धारणा के द्वारा ही ध्यान पर पहुँचा जाता है। योगाचार्यों ने धारणा का निरूपण करते हुए कहा है :—

आसनेन समायुक्तः,
प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो,
धारणां च समभ्यसेत्॥

अर्थात् आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का अभ्यास दृढ़ स्थिर करके धारणा का अभ्यास करना चाहिए।

धारणा की परिभाषा करते हुए गोरक्ष नाथ योगी ने कहा है कि हृदय में मन को और पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश इन पाँच महातत्वों को पृथक-पृथक स्थानों में धारणा करना 'धारणा' कहलाती है। यथा—

हृदये पञ्च भूतानां,
धारणा च पृथक्-पृथक्।
मनसो निश्चलत्वेन,
धारणा साभिधीयते॥

किन्तु योग दर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने किसी सीमित ओर देश में चित्त को एकाग्र कर देना ही धारणा कहलाता है। वे कहते हैं—

देशबन्धःचित्तस्य धारणा

(पाद ३ सूत्र १)

ऊपर जो पञ्च तत्वों का अलग-अलग धारणा करना कहा गया है उसका विवरण इस प्रकार है।

पैर से लेकर जानु पर्यन्त पृथ्वी तत्व का स्थान है, जानु से नाभि तक जल तत्व का स्थान है। नाभि से हृदय तक अग्नि तत्व का स्थान है। हृदय से भ्रूमध्य तक वायु तत्व का स्थान है। और भ्रूमध्य से ब्रह्म रन्ध्र तक आकाश तत्व का स्थान है।

१. पृथ्वी स्थान के बीच प्राणवायु को धारण कर 'लं' बीज सहित चतुर्भुजाकार, सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा का ध्यान कर कर 'धारणा पञ्च नाडिभिः' इस वचनानुसार पाँच घड़ी तक धारणा करने से साधक के शरीर में रहने वाले सब प्रकार के रोग

नष्ट हो जाते हैं और पृथ्वी तत्व उसके वश में हो जाता है।

२. जल स्थान में प्राण वायु का निरोध करके 'वं' बीज के साथ नारायण की चतुर्भुजाकार मूर्ति का अनुभव करते हुए चित्त और प्राण को लय करके पांच घड़ी पर्यन्त धारणा करने से जल स्तम्भन करने वाली 'वारुणी' शक्ति की उपलब्धि होती है यानी इस रूप से जल तत्व साधक के वश में हो जाता है। योगी इस सिद्धि के प्राप्त हो जाने पर जल के ऊपर वैसे ही चलने लगता है जैसे कि पृथ्वी पर। एवं इस सिद्धि के प्रभाव से शरीर पर किसी भी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं पड़ता।

३. अग्नि स्थान में प्राण वायु को रोक कर 'रं' बीज के सहित त्रिनेत्रधारी तरुणादित्य के समान तेजस्वी श्री शंकर की मूर्ति का अनुभव नित्य पांच घड़ी पर्यन्त करने से वैश्वानरी शक्ति साधक के वश में हो जाती है। इससे उसे कहीं भी अग्नि से जलने का भय नहीं रहता। बल्कि साधक में वह शक्ति आ जाती है कि वह अग्नि के अभाव में अपनी शक्ति से सभी वस्तुओं को जला देता है।

४. वायु स्थान में प्राण वायु को रोक कर 'यं' बीज के सहित सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, शान्त स्वरूप, सर्व शक्तिमान, विष्णु का स्वरूप का ध्यान, पांच घड़ी पर्यन्त नित्य करे तो निश्चित अवधि में वायु के स्थिर होने पर 'वायवी' शक्ति साधक के वश में हो जाती है। इससे साधक को आकाश गमन की शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह चाहे जहां तुरन्त पहुंच सकता है।

५. आकाश स्थान में प्राण वायु के ठहरने से 'हं' बीज सहित श्री शंकर का चिन्तन करने से नभो धारणा शक्ति पर साधक का अधिकार हो जाया करता है जिसके फलस्वरूप आकाश तत्व साधक के वश में हो जाता है जिससे मोक्ष मार्ग सुलभ होना सम्भव होता है।

जब इन उपर्युक्त स्थानों में धारणा का अभ्यास किया जाता है तब साधक के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधायें उपस्थित हुआ करती है। इस अभ्यास में यक्षिणी डाकिनी आदि रूपवती नारी के रूप में सामने आकर साधक के मन को डांवाडोल करने का प्रयत्न करती हैं। कभी भयंकर हिंस्र पशु आकर डराते है। जो साधक स्थिर मन होते है वे इन विघ्नों से विचलित न होकर साधना पथ पर अविचल भाव से डटे रहकर सिद्धि की उपलब्धि कर लेते हैं। साधक के इसी दृढ़ अभ्यास को दृढ़ भूमि अभ्यास कहा गया है।

इन पांचों भूतों अथवा पांचों प्रकार की धारणाओं के सिद्ध होने पर साधक को सद्-

चित् आनन्द का अपूर्व अनुभव होने लगता है और सिद्धों का दर्शन भी प्राप्त होता है। धारणा की जब ऐसी स्थिति हो जाय तब ही साधक ध्यान करने का अधिकारी होता है और यहीं से वह षट् चक्रों के भेदन की योग्यता पाता है।

धारणा का अभ्यास बिना एकाग्र चित्त के नहीं होता। अतः चित्त की एकाग्रता अभ्यास भी साधक को उन मुख्य स्थानों में बैठ कर करना चाहिए। विक्षिप्त और चंचल चित्त मनुष्य कभी भी धारणा की सिद्धि में सफल नहीं हो सकता।

धारणा के महत्व का वर्णन करते हुए योगाचार्यों ने लिखा है :—

यस्तु तिष्ठति कौन्तेय,
धारणासु यथाविधि।
मरणं जन्म दुःखं च,
सुखं च स विमुञ्चति॥

अर्थात् हे कौन्तेय! जो मनुष्य विधि पूर्वक यौगिक धारणाओं को सिद्ध कर लेता है वह संसार में जन्म मरण और दुःख-सुख को समूल नष्ट कर देता है अर्थात् वह फिर जन्म-मरण के बंधन में नहीं रहता।

—संसार भयङ्कर अन्धकार और प्रकाश की महान शक्तियों के संग्राम का अनुभव कर रहा है। एक ओर स्वार्थी मनुष्य है जो सुख और अधिकार प्राप्ति की पाशवी इच्छाओं की तृप्ति करने के लिए बेलगाम, पागल और बेजोड़, द्वेष के लिये अंधे की नाईं आगे बढ़ रहा है। कर्त्तव्य के अज्ञान से आदमी असभ्यता की निम्नतम सीमा में पहुँच गया है और वह अपनी शिक्षाओं को निर्जीव भूतकाल के विदीर्ण होते हुए तिथियों के खण्डहर के किसी कोने में देखता है। स्वार्थ और अज्ञान के बन्धनों में बंधे हुए वे अपने दैवी ध्येय को भूल गये हैं। वे पथ-भ्रष्ट हो चुके हैं और उनके हृदय-द्वेष और घृणा से फट चुके हैं।

× × × ×

—मनुष्य में स्वार्थ का रोग जो विश्वव्यापी और भयङ्कर है और जिसके इलाज की सख्त जरूरत है, इतना गहरा गया हुआ है कि वह चारों ओर से खोदकर ही निकाला जा सकता है। सच्ची शान्ति और सुख का प्रभात तभी होगा जब मानव के स्वार्थ का अंत हो जायगा।

× × × ×

यद्यपि नियमों की रचना सर्वोत्कृष्ट तत्वों को अपनाने के लिए हुई है तथापि यंत्रवत् नियमों के पालन करने का नाम आध्यात्मिक जीवन नहीं है आध्यात्मिक जीवन अनुभव और ज्ञान का विषय है। आध्यात्मिक का अर्थ है उस ज्ञान की उपलब्धि जो तमाम शाब्दिक व्याख्याओं से परे है।

—मेहरे बाबा

संकल्प-शक्ति एवं योग

[श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री]

['संकल्प-शक्ति' को आधार बनाकर मनुष्य अपने जीवन में कितनी सफलता प्राप्त कर सकता है। इस विषय पर विद्वान् लेखकने 'सिद्धयोग' के पाठकों को उपयोगी सामग्री देने का सफल प्रयास किया है।] —सं० सम्पादक

"संकल्पविकल्पात्मकं मनः" इस परिभाषा के अनुसार तरह-तरह के संकल्प-विकल्पों में उलझे रहना मन का स्वाभाविक धर्म है। मन वायु से भी तीव्रगामी है। वह जितना चंचल है, उतना ही शक्तिशाली भी है। मन मानव की संपूर्ण शक्तियों का भण्डार और जगत का कारण है। भौतिक जगत एवं आध्यात्मिक जगत में अब तक जो-जो चमत्कारपूर्ण कार्य होते रहे हैं, उन सबका कारण मन ही है। वह इस प्रकार है—

सबसे पहले मन में किसी काम के लिए संकल्प (विचार) उठा और उसे बुद्धि का समर्थन मिला। एक ओर मन उस विषय पर मनन कर रहा है और दूसरी ओर बुद्धि-युक्ति ढूँढ़ रही है। जहाँ मन को बुद्धि का समर्थन और युक्ति मिली, वह फौरन इन्द्रियों को उस काममें लगा देता है और उस संकल्प को कार्य रूप दे देता है। इस प्रकार मनुष्य अपने संकल्प के आधार पर ही सभी प्रकार के लौकिक कार्यों को सिद्ध करता है। उसकी लगन जितनी सच्ची होगी और जितना अधिक उसमें आत्म-विश्वास होगा, उतनी ही जल्दी और युक्तिपूर्वक उसे अपने विचारों को कार्यरूप देने में सफलता मिलेगी।

आध्यात्मिक जगत में साधक का मन बड़े चमत्कारपूर्ण ढङ्ग से काम किया करता है। उसके मन में जो भी संकल्प उठता है, उसके अनुरूप स्वयं ही वातावरण तैयार हो जाता है। अतः उसे अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

उदाहरणार्थ—हम अपने किसी मित्र से मिलना चाहते हैं। उसका घर दूर है। साथ ही यह भी निश्चित नहीं कि वह घर पर मिल ही जायेगा। फिर भी हम उसके घर की ओर चल पड़ते हैं। कुछ ही दूर पहुँचते हैं कि मित्र महोदय सामने से आते दिखाई देते हैं और मुस्कराते हुए कहते हैं कि—अच्छा हुआ, तुम मिल गये। मुझे तुमसे कुछ काम था।

हमारे मनमें एक महत्वपूर्ण कार्यको करने का विचार बार-बार उठता है किन्तु हम काम को करने की स्थिति में नहीं हैं। काफी समय तक उस काम की रूपरेखा का मन ही मन में

निश्चय करते रहते हैं और बाद में परिस्थिति के अनुकूल न देखते हुए उस काम का विचार मन से निकाल देते हैं। कुछ समय बाद यह देखते हमें आश्चर्य होता है कि आप ही ऐसा वातावरण तैयार हो जाता है कि हम बिना किसी योजना के उस काम में हाथ डाल देते हैं और हँसते-हँसते अपने अभीष्ट कार्य को संपन्न कर डालते हैं।

यह है संकल्पशक्तिका प्रभाव। इस अद्भुत शक्ति को प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर विकसित कर सकता है। मन विलक्षण शक्तियों का भण्डार है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है। संकल्प करना मन का स्वभाव है। वह प्रत्येक क्षण विषयों का चिन्तन करता रहता है। इस प्रकार तरह-तरह के अनावश्यक संकल्पों में उसकी शक्ति का ह्रास होता रहता है। यदि वही शक्तिशाली मन एकाग्र हो जाये तो उसकी शक्ति कई गुना बढ़ जाती है और एकाग्रता की अवस्था में मन में जो भी संकल्प उठता है, वह अवश्य पूरा होता है। कहा जाता है कि यह संसार विधाता के संकल्प का ही परिणाम है। मनुष्य स्वयं संकल्पमय है। उपनिषदों में कहा गया है—

"संकल्पमयोऽयं पुरुषः।"

धर्मशास्त्र में कहा गया है—

संकल्पप्रभवाः कामाः,
यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतनियमधर्माश्च सर्वे,
संकल्पजाः स्मृताः॥

संमोहन विद्या की विविध क्रियायें—कृत्रिम निद्रा, मार्जन, वशीकरण, प्रेरणा तथा पाश्चात्य जगत में प्रचलित टेलीपैथी, हिप्नोटिज्म मेस्मेरिज्म तथा दिव्यदृष्टि आदि संकल्प शक्ति पर ही निर्भर करती हैं। इसी शक्ति के आधार पर आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्य के अन्दर शक्ति का संचार करता है। यह शक्तिपात वाणी से, स्पर्श से अथवा दृष्टिपात से किया जाता है।

अपनी तीव्र संकल्प शक्ति से ही गुरुदेव अपने शिष्य के मन में प्रेरणा देकर उसे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाते हैं। वरदान तथा अभिशाप की शक्ति संकल्प शक्ति की उन्नततम अवस्था का ही परिणाम होता है।

संकल्प शक्ति का योग से अटूट सम्बन्ध है क्योंकि मनकी एकाग्रता, विचारों की पवित्रता तथा सदाचार के अभाव में संकल्प-शक्ति काम नहीं कर सकती। अतः इसके विकास के लिए अष्टांग योग को अपनाना नितान्त अपेक्षित है।

योग का आरम्भ मन की एकाग्रता से होता है। जैसा कि योगदर्शन में कहा गया है—"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।" अर्थात्-चित्त वृत्तियों का निरोध तभी सम्भव होगा, जब नाड़ियों की शुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होगी। अतः इसके लिए यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधिरूप योग को अपनाना नितान्त आवश्यक है।

यम-नियमों के पालन से शरीर की बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि होती है; आसन तथा प्राणायाम से नाड़ियों की शुद्धि होती है और प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। योगदर्शन में कहा भी गया है—

"धारणासु योग्यता मनसः।"

अर्थात्-धारणा सिद्ध हो जाने पर योगीका मनोबल बढ़ जाता है मनोबल को ही (विल पावर) संकल्प-शक्ति कहा जाता है। मनकी एकाग्रता के और अधिक बढ़ जाने पर ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान के बाद समाधि का स्थान आता है। यह योग की अन्तिम भूमिका है। समाधि प्राप्त योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो जाती है। यही एकाग्रता की पराकाष्ठा तथा समाधि की उच्चतम् स्थिति है। इस श्रेणी में पहुँचा हुआ योगी जो कुछ कहता है, देखता है और सुनता है, वह सब सत्य ही होता है। वह त्रिकालदर्शी बन जाता है और कहता है कि—जो कुछ जानना था वह मैंने जान लिया है, जो कुछ प्राप्त करना था वह प्राप्त कर लिया है। अब मेरे लिये कुछ भी जानना या प्राप्त करना शेष नहीं रहा।

गीता में इसी स्थिति का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं,
मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन,
गुरुणाऽपि विचाल्यते॥

अतः संकल्प-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए तथा जीवन को सुखी बनाने के लिए योग-सिद्धान्तों पर आचरण करना चाहिए, क्योंकि योगकी कार्यप्रणाली यम-नियमों से आरम्भ होती है। यम-नियमों के पालन से साधकका आहार तथा विहार स्वतः ही पवित्र हो जाता है। इसी पर मनकी पवित्रता निर्भर करती है और पवित्र मन ही संसार के दुःख-द्वन्द्वों से मुक्ति दिलाता है। कहा भी है—

मन एव मनुष्याणां,
कारणं बन्ध मोक्षयोः।

अर्थात् मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। दूसरे शब्दों में, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अतः मनोबल की वृद्धि के लिए हमारा प्रत्येक संकल्प शुभ होना चाहिए। वेदों में ऐसे अनेकों मन्त्र आये हैं, जिनमें ईश्वर से यही प्रार्थना की गई है कि मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो जावे। यथा—

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं,
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है और इसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर चला जाता है। वह दूर जाने वाला ज्योतियों का भी ज्योति मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बने।

ॐ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-
न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

अच्छा सारथी जिस प्रकार वेगवान् घोड़ों को लगाम से पकड़कर चलाता जाता है, उसी प्रकार जो मनुष्यों को लगातार चलाता रहता है, जो हृदय में रहने वाला है वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च,
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

इसी प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द जी अपने राजयोग में लिखते हैं कि योगी को चाहिए— वह प्रातःकाल उठते ही अपनी प्रबल संकल्प-शक्ति से सारे संसार की भलाई के लिये निम्न प्रकार प्रार्थना करे—

"ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः।"

क्योंकि—"Every Bit of hatred that goes out of the heart of a man comes back to him in full force, nothing can stop it and every impulse of life comes back to him."

अर्थात् घृणा का प्रत्येक विचार जो मनुष्य के अन्दर से बाहर आता है, वह वापस अपने पूरे बल से उसी के पास आ जाता है। ऐसा करने में उसे कोई चीज रोक नहीं सकती।

अतः हमें दूसरों के प्रति घृणा के स्थान पर प्रेम और शत्रुता के स्थान पर मित्रता के भाव रखने चाहिए। जो व्यक्ति अपने अन्दर से प्रत्येक के प्रति प्रेम के विचार निकालकर दूसरों की भलाई के लिए प्रार्थना करता है उसे बदले में विश्वनाथ का प्रेम मिलेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शुभ संकल्पों तथा प्रार्थना में महान् शक्ति है। क्योंकि मुँह से उच्चारित किया गया कोई शब्द कभी नष्ट नहीं होता। वह वायुमण्डल में हमेशा विद्यमान रहता है। साथ ही ईथर की वे तरंगें जो अन्तरिक्ष में रहती हैं और जिन पर संकल्पशक्ति काम करती है, हमारे मस्तिष्क में भी विद्यमान हैं। उनमें गति देकर विद्युत पैदा होती है। इन्हीं तत्वों के आधार पर भारतीय संस्कृति में सामूहिक प्रार्थना और वेद-पाठ की प्रथा अनादि काल से चली आई है। किसी प्रकार के अरिष्ट के निवारण के लिए मन्त्र-जप का अनुष्ठान आज भी किया जाता

है, जो कि—नाना चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाता है।

संकल्प अथवा विचारों में अद्भुत शक्ति होती है। हम अपने या दूसरों के प्रति जैसे विचार रखेंगे, हम वैसे ही बन जायेंगे। अतः हमें अपने तथा दूसरों के प्रति सदा उदारभाव रखने चाहिये। हीनता के विचार मन से बिल्कुल हटा देने चाहिये तथा जन-कल्याण के चिन्तनके अतिरिक्त किसी प्रकार का संकल्प नहीं करना चाहिए। हमारे पूर्वज अपनी दैनिक उपासना में प्रभु से निम्न प्रार्थना करते आये हैं—

मित्रस्य चक्षुषा मा सर्वाणि,
भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

साधक को प्राणीमात्र से प्रेम करना चाहिए तभी वह आध्यात्मिक-जगत में प्रगति कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में जगदात्मा श्रीकृष्ण योगी के लक्षण बताते हुए कहते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

समदर्शी योगी अपने में सम्पूर्ण प्राणियों को तथा समस्त प्राणियों में अपने को स्थित देखता है।

यही बात ईशोपनिषद् में भी कही गई है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि,
आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं,
ततो न विजुगुप्सते ॥

जो व्यक्ति सब प्राणियों को आत्मामें तथा सब प्राणियों में आत्मा को देखता है, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता।

योग साधक को किसी प्रकार के अच्छे या बुरे संकल्प नहीं करने चाहिए। यदि उसके मन में कभी कोई संकल्प उठे भी तो वह कल्याणकारी ही होना चाहिए, क्योंकि साधक किस प्रकार योगाभ्यास करे—इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है—

संकल्पप्रभवान् कामान्,
त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं,
विनियम्य समन्ततः ॥

अर्थात्–संकल्पजनित समस्त कामनाओं को पूर्णतया त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभांति रोक ध्यानाभ्यास करना चाहिये।

एक अन्य श्लोक में योगी की स्थिति का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।

अर्थात्–योगी का मन जब सभी प्रकार के

संकल्प-विकल्पों से सर्वथा रहित हो जाता है, तभी उसे योगारूढ़ कहा जा सकता है।

कारण कि—योगी का संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता। उसके मन में जो भी शुभ-अशुभ आवश्यक तथा अनावश्यक संकल्प उठेगा वह अवश्य पूरा होकर रहेगा। ऐसी स्थिति में कई बार अपने संकल्प के कारण बाद में पछताना पड़ता है, जब उसका अनावश्यक संकल्प फलीभूत होता दिखाई देता है।

यूँ तो बहुत से लोग तामसी उपासना से किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करके तरह-तरह के चमत्कार दिखाते हैं और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, किन्तु उसे संकल्पशक्ति नहीं कहा जा सकता। क्योंकि संकल्पशक्ति तो मन की निर्मलता, वाणी तथा विचारों की पवित्रता तथा शुद्ध एवं सात्विक आहार-विहार पर निर्भर करती है। उसके लिए योगदर्शन में बताये गये चित्त की प्रसन्नता के उपायों पर आचरण करना चाहिए। यथा—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

अर्थात्—सुखी व्यक्तियों के प्रति मित्रता की भावना रखें, दुखी के प्रति दया का भाव रखें, पुण्यात्मा को देखकर प्रसन्नता अनुभव करें तथा पापात्मा की उपेक्षा करें। ऐसा करने से भावना के अनुरूप ही मन में शुभ-संस्कारों का उदय होगा। जो कि चित्त की शुद्धि एवं प्रसन्नता का कारण बनेंगे।

संकल्पशक्ति की अभिवृद्धि के लिए व्यक्तित्व में दैवी सम्पदाओं का उत्तरोत्तर विकास करना चाहिए। गीता में दैवी संपदा तथा आसुरी संपदा का विस्तार से वर्णन किया गया है। जिसमें दैवीसंपदा निम्न प्रकार से है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धि-
र्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च,
स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोध-
स्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं,
मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौच-
मद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवी-
मभिजातस्य भारत॥

निर्भयता, अन्तःकरण की पवित्रता, तत्व ज्ञान के लिए ध्यान की स्थिति, सात्विक दान, इन्द्रिय निग्रह, यज्ञ करना, वेदशास्त्रों का पठन-पाठन तथा प्रणवादि पवित्र मन्त्रोंका जप, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना तथा मन, वाणी और कर्म में सरलता।

मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना बुरा करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, चित्त में चंचलता का अभाव, किसी की भी निन्दा न करना, प्राणीमात्र में दया, विषयों में अनासक्ति कोमलता, लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टा का अभाव।

तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर भीतर की शुद्धि एवं किसी के प्रति भी शत्रुता का भाव न रखना, एवं अपने को श्रेष्ठ तथा पूज्य न समझना—ये दैवी संपदा वाले मनुष्यों के लक्षण हैं।

अन्त में लेख का उपसंहार इन दो पंक्तियों में कर रहा हूँ:—

मनुष्य अपने शुभ संकल्पों (विचारों) के कारण ही योगमार्ग में प्रवृत्त होता है और निरन्तर योगाभ्यास से अपने संकल्पों को और भी अधिक पवित्र, सात्विक तथा सीमित बना लेता है, जिससे उसकी संकल्प शक्ति इतनी प्रभावशाली बन जाती है कि समस्त भौतिक शक्तियाँ भी उसका सामना नहीं कर सकतीं। अतः कहा जा सकता है कि संकल्पशक्ति योग की ही देन है।

अज्ञान

यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो जब मनुष्य की समझ में ज्ञान का स्वरूप अच्छी तरह आजाता है तब सहजमें ही यह बात उसकी समझमें आजाती है कि अज्ञान किसे कहते हैं, क्योंकि जो ज्ञान नहीं है वह अपने आप अज्ञान सिद्ध होजाता है। —संत ज्ञानेश्वर

× × × ×

अज्ञानी

जो केवल महत्व या प्रतिष्ठा पाने के लिए ही जीता है, जो केवल मान की प्रतीक्षा करता रहता है और आदर-सत्कार होने से ही जिसको सन्तोष होता है, जो पर्वत के शिखर की भाँति सदा ऊपर ही रहना चाहता है और अपने उच्च पद से कभी नीचे नहीं उतरना चाहता, उसके सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए कि उसमें अज्ञान की ही समृद्धि है।

× × × ×

शौच

यह शौच उस गुण का नाम है जिसके कारण मन शुद्ध भक्ति से भरा रहता है और शरीर निर्मल आचरण से सुशोभित रहता है तथा जिसके कारण मनुष्य का सारा जीवन-क्रम बाहर-भीतर एकसा बना रहता है।

मेरे वायव्य में

[श्री राघवेन्द्र तिवारी]

सूरज और धरती
यह सभी उस अपेक्षा
की डायरी के
पृष्ठों के दिनांक हैं
जिन पर आदिम पर्वों के
भ्रूण,
किसी महा माया के
आक्रोश में जीने की
असफल कोशिश
करते हैं,
ओ महा प्रभु !
यह एक साल
बारह महीने
या इतने दिन
तेरी आराधना में
तत्पर,
एक व्यक्ति बोध
की समीक्षा में
कितने व्यक्तिगत हैं
कि सारा योग
और अभिजात्य—
सत्येता
धर्म की आग में भी
एक एकान्तता
अनुभव करती है
मेरे वायव्य में
देशान्तर का भ्रम
किसी पद्मासनी
मुद्रा का
एक अपभ्रंश
नहीं तो क्या ?
धीर प्रत्युत धीर
का सन्देह
मेरी तिमिरजयी
श्रद्धा पर
एक अविश्वसनीय
आरोप लगाने
को बढ़ रहा है
जैसे कि पारावार
अपनी आगामागामी
मुद्रा में एक
सन्तोष गढ़ रहा है
योगेश्वर !
मेरी चिरन्त साधना

इतना वेग
इतनी गति
स्वयं में किये हैं
आरोपित
कि सारी गतियाँ
और हलचलें
उन्मेष मात्र से
सिहर कर
ध्वस्त हो
जाती हैं
मेरे आराध्य !
यही एक प्रश्न था
मुझे आदमी
बन आने तक का
किन्तु मेरी
विश्वासता का
यह प्रश्न नहीं
है कि मैं
अन्तस्थित होकर
यहाँ-वहाँ भटकूँ
और स्वच्छन्दता !
एक धरोहर की तरह
दूर से ताकी आप—
मेरे प्रभु !

प्राणायाम क्या है

अभ्यास के समय साधक जो प्राण वायु को धारण करता है, या वायु नियंत्रण किया को, प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम दो प्रकार के होते हैं—सबीज और निर्बीज। जिसमें भगवान के नाम और रूपका आलम्बन हो उसे सबीज प्राणायाम, तथा जिसमें ऐसा कोई आलम्बन नहीं है उसे निर्बीज प्राणायाम कहते हैं।

प्राणायाम करते समय प्राण और अपान एक दूसरे का पराभव करते हैं, तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं। और इन दोनों के संयम (निरोध) करने से कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है।

प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासिका के एक छिद्र को बन्द करके दूसरे से जो वायु को भीतर भरा जाता है, इस क्रिया को पूरक कहते हैं। इसमें प्राण वायु का दबाव पड़ने से अपान वायु नीचे की ओर दबती है, यही प्राण के द्वारा अपान का पराभव है। अब नासिका के दूसरे छिद्र को बन्द करके पहले से वायु को बाहर निकाला जाता है, उसे रेचक कहते हैं। इसमें प्राण वायु के बाहर निकलने से अपान वायु ऊपर को उठती है यही अपान द्वारा प्राण का पराभव है। भीतर भरी हुई वायु को जब नासिका के दोनों छिद्र बन्द करके कुछ काल तक रोका जाता है, उस समय प्राण और अपान दोनों नियत स्थान और सीमा में अवरुद्ध रहते हैं। यही इन दोनों का संयम या निरोध है। इसी को कुम्भक प्राणायाम कहते हैं।

—श्री राघवेन्द्र तिवारी

महायोग का स्वरूप, साधना और परम्परा

[श्री सत्यप्रसाद शास्त्री]

गतांक में भी इस महायोग के विषय में प्रकाश डाला गया था। 'योग' शब्द का अर्थ ही बहुत व्यापक है। जिस किसी परम भाग्यशाली पुरुष को जन्मान्तर संस्कार और सुकृतों के कारण योग की स्फुरणा जन्म से ही सिद्ध हो जाया करती है तथा वह इस विषयक साधना न करके भी पूर्णतया योगयुक्त हो जाया करता है, उसको भी प्रकारान्तरसे महायोग की ही अवस्था कहना असंगत न होगा।

"मन्त्रो लयो हठो, राज-
योगोऽन्तर्भूमिका क्रमात्।
एक एव चतुर्विधोऽयं,
महायोगोऽभिधीयते॥"

इन चारों, मन्त्रयोग, हठयोग और राजयोग का संयुक्त स्वरूप ही महायोग कहा गया है। मन्त्रयोग, लययोग और हठयोग के स्वरूप की विवेचना भी गतांक में की गई है।

राजयोग—राजयोग की प्राप्ति से पुरुष सिद्धिसम्पन्न होकर परिपूर्ण निर्मल चित्त वाला हो जाता है। मानव बाह्यान्तर ज्ञानसे परिपूर्ण होकर कभी क्षुब्ध नहीं होता। वह जरा जन्म-मृत्यु की परिधि से मुक्त होकर अगाध-आनन्दार्णव में हमेशा ही निमग्न रहता है। सुख, दुःख रहित होकर आत्म-स्वरूप में डूबा रहता है। उसको अणिमादि सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जैसा कि योगशिखोपनिषद् में वर्णित है—

"राजयोगे कृते पुम्भिः,
सिद्धिचिन्हं भवेदिति।
परिपूर्णं भवेच्चित्तं,
जगत्स्थोऽपि जगद्बहिः।
न क्षोभं जन्ममृत्युश्च,
न सुखं न दुःखं तथा।
अणिमादिपदं प्राप्य,
राजते राजयोगतः॥"

इसी महायोग को कूर्मपुराण उत्तरार्द्धाध्याय ११ में प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा गया है—

"अतः परं प्रवक्ष्यामि,
योगं परमदुर्लभम् ।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति,
भानुमन्तमिवेश्वरम् ॥
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं,
पापपंजरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं,
साक्षात् निर्वाणसिद्धिम् ॥
एककालं द्विकालं वा,
त्रिकालं नित्यमेव च ।
ये युञ्जन्ति महायोगं,
ते विज्ञेया महेश्वराः ॥

जिस योगी लोग सूर्यसदृश प्रकाशमान अपने आत्मस्वरूप ईश्वर को देखते हैं, वह महायोग रूपी अग्नि शीघ्र ही कर्मरूपी पाप-पंजर को जला देता है और महायोग की साधना से कर्म-समूह दग्ध होजाने पर साक्षात् मोक्षसिद्धि को देने वाला निर्मल ज्ञान प्रकट होता है। योग साधना से ज्ञानोत्पत्ति और ज्ञान से योग प्रवृत्ति होती है। यह ज्ञान योग के सहयोग से मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है। अतः कूर्मपुराण में महेश्वर मतानुसार भानु-सदृश आत्मप्रकाश रूपी ईश्वर की उस अखण्ड मण्डलाकार में तल्लीनता को ही महायोग का पर्याय माना गया है। वस्तुतः पूर्व वर्णित स्वरूप और यह एक ही लक्ष्य प्राप्ति के समान साधन हैं। महायोग के विषय में इस प्रकार भी कहा गया है :

"योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो,
ह्यभावो प्रथमो मतः ।
अपरस्तु महायोगः,
सर्वयोगोत्तमोत्तम् ॥"

अर्थात् योग दो प्रकार का है। प्रथम—अभावयोग और द्वितीय योगों में सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ योग महायोग है। अभाव योग का लक्षण इस प्रकार वर्णित है :

"शून्यं सर्वं निराभासं,
स्वरूपं यत्र चिन्त्यते ।
अभाव योगः स प्रोक्तो,
येनात्मानं प्रपश्यति ॥"

भावार्थ इस प्रकार है—जिस योग में शून्य और वेदान्तकथित सर्व प्रकार से निराभास-स्वरूप का चिन्तन किया जाता है अर्थात् जिस योग से आत्मा को निर्गुण शून्य मानकर ध्यान द्वारा साक्षात्कार होता है, उसको अभाव योग कहते हैं तथा महायोग के विषय में इस प्रकार कहा गया है।

"यत्र पश्यति चात्मानं,
नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
मयैक्यं स महायोगो,
भाषित परमः स्वयम् ॥"

अर्थात् जिसमें योगी लोग आत्मा को ध्यान द्वारा नित्यानन्दस्वरूप, निरंजन देखते हैं तथा समाधि में मेरे साथ एकता लाभ करते हैं, वह

दूसरा परम श्रेष्ठ महायोग कहा गया है। महायोग को सर्वोत्तम बतलाते हुए कहा गया है कि—

"ये चान्ये योगिनां योगाः
भूयन्ते ग्रन्थविस्तरे।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां,
नार्हन्ति षोडशीम् ॥"

अर्थात्—अन्य योगिजनों के योग इसके समक्ष अकिंचन और नगण्य हैं। यही योग ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र उत्कृष्ट साधन है। यही परमानन्दप्राप्ति व कैवल्य लाभ का केवल साधन है। इसको ही महायोग की संज्ञा दी गई है और इसकी श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—

यत्र साक्षात्प्रपश्यन्ति,
विमुक्ता विश्वमीश्वरम्।
सर्वेषामेव योगानां
सः योगः परमो मतः ॥
सहस्रोऽथ यहुशो ये-
चेश्वर बहिष्कृताः।
न ते पश्यन्ति मामेकं,
योगिनो यतमानसाः ॥

भगवान महेश्वर के श्रीमुख से निःसृत यह योग परमोत्तम है। क्योंकि दूसरे योग योगियों द्वारा कहे गये हैं और यह महायोग स्वयं भगवान महेश्वर ने कहा है। इसलिए वे योग इस महायोग के तुल्य नहीं हो सकते। इस योग में जीवन्मुक्त योगीजन अखिल विश्व व ईश्वर को साक्षात् देखते हैं। इस परम पावन महायोग के प्रभाव से सकल ब्रह्माण्ड के पारमार्थिक तत्त्व यथातथ्य जाने जाते हैं। कुछ भी अज्ञेय नहीं रहता। इन सब योगों में महायोग ही सर्वश्रेष्ठ ईश्वर को मिलाने वाला है। यह परम महायोग महेश्वर भगवान ने नारायण को देकर कहा—यह आत्मयोग मैंने ब्रह्मवादियों के लिये कहा है, इसलिये उस अखण्ड मण्डलाकार में तल्लीनता का यही एक साधन है। श्री महेश्वर से महायोग प्राप्त होने पर अनन्त भगवान नारायण अपने पास बैठे हुए सर्व योगीन्द्रों से बोले—आप लोग भी सबका हित करने वाला इस महायोग का ज्ञान द्विजाति भक्तों को तथा अपने शिष्यों को विधिपूर्वक उपदेश करना। स्वयं भगवान नारायण ने तपस्वी वेष धरकर यह ज्ञान दिया। जैसा कि लिखा है :—

नारायणोऽपि भगवां-
स्तापसवेषधरमम्।
जगाद योगिनः सर्वास-
इत्युक्त्वा श्रेष्ठम वपुः ॥

तदनन्तर महामुनि सनत्कुमार ने यह महायोग का ज्ञान सम्वर्त को दिया। ऐसे ही योगीन्द्र सनन्दन ने महेश्वर के महायोग का ज्ञान महर्षि पुलह को दिया। इसी तरह प्रजा-

पति पुलह ने गौतम ऋषि को दिया। अंगिरा ऋषि ने वेद के जानने वाले भारद्वाज ऋषि को दिया, यही ज्ञान योगिराज सिद्ध कपिल मुनि ने योगी जैगीषव्य और पञ्चशिखाचार्य को दिया। जैसा कि कहा गया है—

परासरोऽपि सनकात्,
पिता मे सर्वतत्त्वदृक्।
लेभे तत्परमं ज्ञानं,
तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान्॥
मामुवाच पुरादेवः,
सतीदेह भवाङ्गजः।
वामदेवो महायोगी रुद्रः,
किल पिनाकधृक्॥
नारायणोऽपि भगवान्,
देवकी तनयो हरिः।
अर्जुनाय स्वयं साक्षात्,
दत्तवानिदमुत्तमम्॥

भगवान वेदव्यास कहते हैं कि इसी तरह श्री महेश्वर कथित महायोग का ज्ञान सब ऋषि मुनियों ने आपस में कहा-सुना और लिया-दिया। सर्व तत्वों के ज्ञाता पाराशर मुनि को भी यह सत्य ज्ञान योगीन्द्र भगवान सनक मुनि से मिला। तब ऋषि वाल्मीकि ने ग्रहण किया। पहले यह परम ज्ञान महायोग शिवजी के तेज एवं सती के देह से प्रकट हुए पिनाक-धारी रुद्ररूप महायोगी भगवान वामदेव ने श्री व्यास जी से कहा—देवकी पुत्र कृष्ण ने स्वयं इसी महायोग का परमश्रेष्ठ ज्ञान अर्जुन को दिया।

इसी तरह ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि की परम्परा से यह महायोग चला आता है। जिस पाशुपत महायोग का ज्ञान परम योगेश्वर महेश्वर ने योगीश्वर भगवान विष्णु को कहा। महायोगी भगवान विष्णु ने सनक, कपिल आदि योगीजनों को कहा तथा उन्होंने अन्यान्य ऋषि मुनियों को इस विषयक ज्ञान दिया। उस महायोग के चार पाद कहे गये हैं। वायवीय संहिता उत्तर खण्ड अध्याय २० में इस प्रकार कहा गया है—

ज्ञान क्रिया च चर्य्या च,
योगश्चेति सुरेश्वरि।
चतुष्पादः समाख्यातो,
मम धर्मः सनातनः॥

ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग यह चार पादों वाला है। चर्या—शास्त्र विहित वर्णाश्रम धर्म, देव द्विज पूजन, भिन्न-भिन्न तद्विषयक धार्मिकाचरण चर्या कहलाते हैं। संसारस्थ तथा सांसारिक प्रकृतिस्थ मानव निवृत्ति परायण नहीं होते। इहलौकिक कृत्य को ही वे सब कुछ समझ बैठते हैं, इसके अतिरिक्त उनका कुछ और लक्ष्य नहीं रह जाता। वे मरणपर्यन्त इसी तारतम्य में जुटे रहते हैं, मनुष्य व्यवहार कुशल होते हुए ईश्वर में भक्ति पूर्वक, देव

परायण होकर, सब दैनिक व्यवहारों को वैराग्ययुक्त यथा विधि सम्पादन करके, ज्ञान और मोक्ष की ओर प्रवृत्त हो सके, इसलिये ऋषियों ने वर्णाश्रम धर्म के नियम भगवद्भक्ति तथा देवार्चन विधि का विधान किया है, यह चर्या पाद सनातन धर्म का प्रथम मुख्य अङ्ग है। इसको आचार धर्म भी कहते हैं।

क्रिया और योग—वास्तव में मनुष्य जन्म का लक्ष्य ज्ञानार्जन करके मोक्ष प्राप्ति करना है। लोक संग्रह करता हुआ भी मानव कुछ समय प्रतिदिन क्रिया और योग में लगाता रहता है तो उसको ज्ञान की प्राप्ति यथासमय स्वयं हो जाती है। कहा गया है कि—

तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।

अर्थात् ज्ञान स्वयं योग की पूर्ण सिद्धि के द्वारा यथा समय अन्तरात्मा में प्राप्त होता है। क्रिया और योग दोनों ही सहयोगी हैं। क्रिया की सहायता से योग की सिद्धि होती है। वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" परमात्मा में चित्त लगा कर अन्य वृत्तियों को सर्वथा रोकने को योग कहते हैं। षट्चक्रों की शुद्धि करने की विधि के द्वारा गुरु के अधीन रहकर उनके वासनानुकूल अभ्यास करने को क्रिया कहते हैं। इसी के द्वारा षट् चक्रों की शुद्धि होती है। क्रिया का अभ्यास गुरु कृपा के बिना किसी अन्य उपाय से नहीं मिल सकता है, इसीलिये गुरु कृपा लाभ करना परमावश्यक है। गुरु कृपा से क्रिया, क्रिया द्वारा षट्चक्र शुद्धि और फिर योग की प्राप्ति होती है।

ज्ञान——ज्ञान के बिना मुक्ति सर्वथा असम्भव है। "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" ऐसा कहा गया है। पाशुपत महायोग के मतानुसार (१) जीव (२) उसके बन्धन रूपी पाश (३) और पाशों से मुक्त होने का उपाय, इन तीनों पशु, पाश, पति' के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। घृणा, लज्जा, भय, शोक, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति ये आठ पाश हैं। इनसे बँधा जीव पशु कहलाता है। और इनसे मुक्त होकर स्वयं शिव हो जाता है। पर ब्रह्म शिव को इसी अभिप्राय से पशुपति कहते हैं। यह योग ब्रह्म का ज्ञान मोक्षप्रद है। चर्या, क्रिया और योग; तीनों के सहयोग से ज्ञान के प्रकाश का अनुभव होता है और ज्ञानाग्नि से आठों पाश भस्म हो जाते हैं और इनकी शुद्ध भस्म से विभूषित जीव कान्तिमान, शिवस्वरूप होकर चिदानन्द का अनुभव करता है। गीता में भी श्री भगवान आनन्दकन्दश्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं।

ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणि तमाहुः पंडितं बुधाः"।

अर्थात् ज्ञान रूपी अग्नि से कर्मजाल भस्म हो जाते हैं और जीव शिवरूप हो जाता है।

ज्ञान और उसके प्राप्त्यर्थ क्रिया और योग का साधन-क्रम महायोग कहलाता है। महा-

योग बिना सद्गुरु की कृपा से उपलब्ध नहीं हो सकता। जब गुरु प्रसन्न होकर शक्तिपात द्वारा शिष्य पर कृपा करते हैं, तब उसमें महायोग का संचार होता है, अन्यथा नहीं। बिना शक्तिपात शिष्य का परिश्रम वृथा है। क्योंकि तत्वज्ञान बिना शक्तिपात के कभी नहीं हो सकता और उस परब्रह्म की सर्व व्यापकता अनुभवजन्य ज्ञान, जो पंचतत्व शुद्धि के लिये निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यातीत इन पांच प्रकार की अवस्थाओं का मन में उदय होना आवश्यक है और विद्या का उदय होने पर आनन्दकन्द भगवान् आनन्द, परमानन्द, चिद्घन, और प्रकाश इन पाँचों स्वरूपों के ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ता है। मोक्ष प्राप्ति पूर्व ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान साधकों के साक्षात्कार अनुभवका विषय बनजाया करता है।

जब तक परमात्मा के उक्त गुणों को ग्रहण करने का सामर्थ्य चित्त में नहीं आता तब तक साधक सिद्धि लाभ नहीं कर सकता। केवल शाब्दिक ज्ञान "मैं ब्रह्म हूँ" मुख से उच्चारण करने से मोक्ष नहीं होता। भिन्न भिन्न भूमिकाओं में से चित्त की गति बढ़कर परब्रह्मपरमेश्वर का साक्षात्कार होने से मोक्ष प्राप्ति होती है।

इस प्रकार यह महायोग ही उस परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति का साधन है। परन्तु यह केवल गुरु कृपा से ही उपलब्ध होना सम्भव है। तथा गुरु कृपा से इस महायोग को प्राप्त कर साधक कृतकृत्य हो जाता है। और मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। अस्तु, इस परमानन्द प्राप्ति का केवल साधन सद्गुरुप्रदत्त यही महायोग है। सन्त तुलसीदास जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

' बिन गुरु कृपा भव-
निधि तरहिं न कोई।
जो बिरंचि शंकर,
सम होई ॥

सत्संगति के प्रभाव से मुमुक्षु शीघ्र ही मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। सत्संग से कितने दिन में मुक्ति मिलती है, इस सम्बन्ध में समर्थ गुरु रामदासजी कहते हैं— "जैसे लोहा पारस के छूने से उसी क्षण सोना हो जाता है, जलबिन्दु सागर में तत्काल मिल जाता है और जैसे कोई नदी गंगा से मिलते ही गंगा का रूप हो जाती है, उसी प्रकार जो पुरुष सावधान, उद्योगी और दक्ष हैं उन्हें तत्काल ही सत्संग से मोक्ष मिलता है। और दूसरों के लिये तो असाध्य है—उसे देख ही नहीं सकते।"

—स्तुतिसार

अद्भुत बालक पर अद्भुत कृपा

[श्री अशोककुमार]

प्रेषक—श्री ईश्वरीप्रसाद ठाकुर, झाँसी

नैपाल निवासी, विपुलधारी, अष्टांग योग के ज्ञाता, कृपानिकेतन हमारे श्री सद्गुरुदेव जी के चरण-कमलों में छोटे भाई रामदत्त शर्मा को स्थान मिलने का परम-सौभाग्य गत गंगा दशहरा को प्राप्त हो चुका था। राम इण्टर कक्षा का विद्यार्थी होते हुए भी घर का समस्त कार्य प्रसन्नता से करता तथा नियमित श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का चिन्तन तथा स्वाध्याय लगन से करता था। राम नेति धौती, गंगासागर से जलनेति करता था। जीवन-तत्व साधन और सर्वाङ्गासन करते हुए उसे देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो उसे यह समस्त क्रियाएँ उन चरणों की कृपा के फलस्वरूप सिद्ध हो गई हों। राम प्रायः श्री सद्गुरुदेव के गुणानुवाद गाया करता था। घर के समस्त प्राणियों में उसकी प्रभु चरण-कमलों में विलक्षण निष्ठा झलकती थी।

राम को मोतीझरा ने आ घेरा, फिर भी उसे लवलेशमात्र भी चिन्ता न थी। उसके शरीर के प्रत्येक अङ्ग में दर्द होता था, लेकिन वह यही कहता था कि, "प्रभुजी, हमारे कर्मों का जल्दी-जल्दी भुगतान कर रहे हैं।" वह हमेशा प्रभुजी का सम्बोधन श्री सद्गुरुदेव जी के लिए ही करता था। वह सबके साथ गुरु-पूर्णिमा पर्व पर श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आश्रम लाया गया। केवल प्रभुजी के ही चरणों में राम ने कहा—"प्रभुजी, कृपा कर दो। अब नहीं सहा जाता, अब कृपा कर दो।"

जन्मोत्सव पर्व पर श्री सद्गुरुदेव जी ने अपने कर-कमलों से राम को प्रसाद दिया, जिसके फलस्वरूप तापमान और दर्द तो तत्काल समाप्त हो गया। तत्पश्चात् श्री सद्गुरुदेवजी ने राम की उचित चिकित्सा कराने हेतु हमारे पिताजी पं० राधेश्याम को आज्ञा दी। झाँसी वापिस आने के उपरान्त एक दिन राम को ज्वर बढ़ गया। राम स्वतः उठने-बैठने में असमर्थ था और उसे हम लोगों की सहायता लेनी पड़ती थी। अतः उसने श्री प्रभुजी के सिंहासन को इस प्रकार घर में स्थापित करवाया जिससे वह श्री चरण-कमलों के दर्शन चारपाई पर लेटे-लेटे ही कर सके। राम अवि-

सोता मौन रहता और गत पन्द्रह दिन से अहर्निश टकटकी लगाकर प्रभु जी के चरण-कमलों के दर्शन करता रहता था।

एक दिन सहसा ही राम ने मुझसे कहा—"भाई साहब, प्रभुजी ने मेरा भाग्य बदल दिया है, वे मुझे शीघ्र ही स्वस्थ करके महान योगी बनवायेंगे, और देखो मेरे दाहिने हाथ में एक नई रेखा समस्त रेखाओं को काट रही है तुम देखो तथा मुझे भी दिखाओ।" हम सभी ने राम का दाहिना हाथ देखा तो एक रेखा समस्त रेखाओं को काट रही थी, जिसे हमने पहले कभी नहीं देखा था, और वह सबसे गहरी थी। हमको प्रभुजी के ये वचन स्मरण हुये कि—"विधाता की रेखा को वह विधाता स्वयं भी बदलने में असमर्थ है—केवल एक श्री सद् गुरुदेव ही अपनी स्वेच्छा से उसे मेट कर नई रेखा डाल सकते हैं।" "भागहि मेंट सकहि त्रिपुरारी" के अनुसार श्री सद् गुरुदेव जी ने राम के लिए यह चरितार्थ किया।

श्री प्रभुजी की प्रेरणा के फलस्वरूप रामकी चिकित्सा एक ब्राह्मण वैद्यराज जी कर रहे थे। गत १८ अक्टूबर को प्रातः राम ने वैद्य जी से कहा—"वैद्यजी! हमारे प्रभुजी ने कहा था गोपालजी तुम अन्न खाकर क्या करोगे तुम तो फल, दूध और खोये की मिठाई खाकर तप करो, तब हम क्या खा सकते है।" वैद्यजी ने राम को फटे दूध में ग्लूकोज मिलाकर खाने के लिए कहा, ताकि उसे रसगुल्ला के समान ही स्वाद मिल सके। राम ने अनमने स्वर में कहा 'अच्छा, तो बनाकर देख लो।' मैंने उसी ही समय आधी कटोरी दूध में आधा नीबू का रस निचोड़ दिया और उसे गर्म किया लेकिन दूध नहीं फटा। उसका स्वाद रबड़ी के समान मीठा हो गया। तब वैद्यजी ने कहा—इसे रसगुल्ला ही खिलाओ।

१९ अक्टूबर को सायंकाल लगभग ५ बजे पिताजी और हम राम के समीप ही आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी की हिमालय यात्रा की चर्चा कर रहे थे। जब हमने यह कहा कि श्री महाप्रभु जी के साथ जो ब्रह्मचारी शिष्य थे जिनका नाम हमको स्मरण नहीं हो रहा है तभी राम ने चौंककर कहा "कृष्णानन्द और मुक्तराम"। तदनन्तर पुस्तक में देखने पर उपर्युक्त नाम सत्य निकले। ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रभुजी की कृपा से राम यह घटना देख रहा हो।

कुछ समय पश्चात् हम श्री प्रभुजी की आरती करने जा रहे थे, मुझ से राम कहने लगा—'भाई साहब मुझे खड़ा कर दो, माता जी मुझे खड़ा कर दो।' जब हमने असमर्थता प्रकट की तो उसने कहा—'अरे, तुम सब कैसे हो, मुझे खड़ा क्यों नहीं करते हो, देखो मैं पूर्णरूपेण स्वस्थ हूँ।' कुछ देर तक ऐसा कहते हुए शान्त हो गया।

हमने श्री प्रभुजी की आरती की। आरती के उपरान्त राम की जिह्वा लड़खड़ाने लगी, मूर्छित-सा होकर वह तेजी से दाँत कटकटाने लगा, जिह्वा को बाहर निकाल देता, वह जोर-जोर से अपने ओंठ काटने लगा, उसके मुख से रक्त व झाग निकलने लगे, नेत्र ऊपर को चढ़े हुए थे। हम लोग राम की इस स्थिति को देखकर घबराने लगे। उसकी जिह्वा की रक्षा के लिए हमने स्टील की चम्मच को दोनों जबड़ों के मध्य बलपूर्वक फँसा दिया। हमारी माता जी ने छोटे भाई देवेन्द्र को कहा कि भाई श्री ईश्वरी प्रसाद माथुर जी और पिता जी को शीघ्र ही बुला लाओ। इसके बाद हम सभी श्री प्रभुजी के नाम का उच्चारण तथा मन्त्र का जप करने लगे।

कुछ ही समय पश्चात् राम उसी ही अवस्था में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी को व्यग्रता से स्मरण करने लगा—

"प्रभुजी आओ, प्रभुजी आओ, सँवाई वाले आओ, नेपाल वाले आओ, प्रभुजी रक्षा करो, प्रभुजी आओ, जल्दी आओ, प्रभुजी गद्गद आओ, सब छोड़कर आओ,..........।" इस प्रकार राम प्रभुजी को स्मरण करता रहा, प्रत्येक बार प्रभुजी को स्मरण करने के साथ ही उसकी आवाज स्पष्ट होती जाती थी। इसी बीच राम ने यह भजन भी गाया—

"प्रभुजी मोरी नैया लगादो पार,
नैया लगादो पार, प्रभुजी मोरी नैया लगादो पार।
भोले बाबा नैया लगादो पार,
सँवाई वाले नैया लगादो पार,
नेपाल वाले नैया लगादो पार,
मेरे राम चल-चल प्रभुजी के द्वार,
प्रभुजी तेरी नैया लगावेंगे पार,
प्रभुजी मोरी नैया लगादो पार॥"

कई बार पुनः "प्रभुजी आओ, गुरुदेव आओ" का स्मरण किया। कुछ ही समय पश्चात् राम ने कहा—

"हमारे प्रभुजी आ गये, हमारे वैद्य श्री प्रभुजी आ गये, जटाधारी आ गये, त्रिशूलधारी आ गये, नेपाल वाले आ गये, प्रभुजी ने हमको रक्षा दी—प्रभुजी त्राहिमाम्, प्रभुजी त्राहिमाम्, त्राहिमाम्, त्राहिमाम्, त्राहिमाम्, त्राहिमाम्......।" राम ने कई बार ऐसा कहते हुए श्री प्रभुजी को प्रणाम किया।

छोटे भाई देवेन्द्रने पूछा "राम प्रभुजी किस पर आये ?" रामने गर्जनके साथ कहा "हमारे प्रभुजी आकाश मार्ग से आये, आकाश मार्ग से, आकाश मार्ग से। प्रभुजी ने मेरे मस्तक पर अपना चरण रख दिया, चरण रख दिया, प्रभुजी आपकी जय हो, जय हो, जय हो।"

पुनः वजेन्द्र ने पूछा 'राम, प्रभुजी कैसे हैं ?' प्रत्युत्तर में रामने आनन्द विभोर अवस्था में दीर्घ स्वर में कहा—'प्रभुजी का श्वेत वर्ण, जटायें हैं, दाढ़ी है, हाथ में त्रिशूल है, गेरुए वस्त्र पहने हैं, चरण लम्बे और लाल अत्यन्त सुन्दर हैं।'

पुनः राम कहने लगा—"हमारे प्रभुजी आ गये, सवारी वाले आ गये, काली कुत्तों वाले आ गये, प्रभु जी ने मेरे मस्तक पर चरण रख दिया। प्रभुजी त्राहिमाम्, प्रभुजी पाहिमाम्, पाहिमाम्, पाहिमाम्, पाहिमाम्, पाहिमाम्...।"

तदनन्तर राम ने श्री प्रभु जी की वन्दना की—

मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा,
पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा।
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं,
प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥

"योग-योगेश्वर, सिद्ध सिद्धेश्वर, श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज की जय, प्रभु जी की जय हो, बारम्बार जय हो, जय हो, जय हो।"

इतनी सी सूचना प्राप्त होते ही श्री ईश्वरीप्रसाद कक्कड़ साहब, श्री ब्रजनन्दन तिवारी जी के साथ हमारे निवास स्थान पर आ पहुँचे थे। हमने कहा—'राम, कक्कड़ बाबा आ गये।' राम ने तुरन्त कहा—'बाबा आ गये, दिखाओ बाबा कहाँ हैं, बाबा जय गुरुदेव।' बाबा ने भी कहा—'भाई जय गुरुदेव।' राम की स्थिति का अवलोकन करके बाबाने हमारी माता जी के प्रश्नोत्तर में कहा कि बहिन राम प्रभु चरणों की कृपा फलस्वरूप बिलकुल ठीक है। देखो उसकी क्रिया चालू है और श्रीप्रभु जी के दर्शन का पूरा-पूरा लाभ उठा रहा है, अतः शान्त होकर केवल राम के शब्दों का श्रवण करो। हम लोगों ने बाबा के शब्दों का तुरन्त पालन किया। राम के मुख से झाग आ रहे थे, जल अथवा औषधि नहीं लेता था। राम के नेत्र ऊपर चढ़े हुए थे, परन्तु जब-जब उससे कहा कि राम, प्रभुजी का चरणामृत लो अथवा प्रभु जी का रज-प्रसाद लो, राम सहर्ष मुँह खोलता और तुरन्त सेवन कर लेता था।

कुछ ही समय पश्चात् राम को दो औरतें व कोतवाल दिखाई दिये जो उसकी ओर बढ़ने के प्रयास में थे। राम अपशब्दों का प्रयोग करते हुए कहने लगा—"अरे, तुम्हारी यह मजाल, एक साथ आओगे, प्रभुजी के सामने आओगे, प्रभुजी से लोहा लोगे, प्रभुजी इन्हें भगा दो, मार दो, दबा दो, प्रभु जी दबाये जाओ, दबाये जाओ, दबाये जाओ। अहा प्रभु जी ने भगा दिये, कान खींच लिये, भाग गये; हमारे श्री प्रभुजी अनन्त शक्ति के स्रोत हैं।"

तत्पश्चात् राम पुनः श्री प्रभु जी की वंदना करने लगा—"प्रभुजी, भरत जिसके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा, जिसने शेर के दाँत गिने, उनके साथ आप ही तो थे, प्रभु जी

आपही की तो शक्ति थी और प्रभुजी, शिवाजी ने छः सौ, छः हजार, छः लाख, छः करोड़ मराठों को जगाया, उनके साथ भी तो आप ही थे, आपकी ही तो शक्ति थी वही प्रभुजी।"

समस्त देश एक ओर, हमारा राष्ट्र एक ओर, तब भी विजय हमारे देश को प्रभु जी आप ही की तो शक्ति है।

सर्वनाश, सर्वनाश, सर्वनाश; हाहाकार, हाहाकार, हाहाकार; शेष केवल हमारे प्रभु जी का योग, योग, योग; हमारे श्री प्रभु जी नई सृष्टि के रचयिता है, नई सृष्टि बनाते हैं।

इन सभी वाक्यों को कहते हुए उसके स्वर में जब गर्जन था, आवाज शान्त वातावरण में गूँज रही थी। तत्पश्चात् राम प्रभु जी से विनय करने लगा—"प्रभु जी छत तोड़ दो, दिवाल हटा दो, प्रभुजी छत तोड़ दो, दिवाल हटा दो, प्रभुजी छत तोड़ दो, दिवाल हटा दो। प्रभुजी चलो, प्रभुजी चलो—

अहा, हिमालय, कैसा सुन्दर हिमालय है, हमारे देश का मस्तक है। कैलाश, कैलाश, कैलाश, मानसरोवर कैसा सुन्दर है। गंगा, गंगा, गंगा कैसी सुन्दर है। चलो, प्रभुजी चलो—

अरे इन्द्र, तुम मेघ वर्षा करते हो, प्रभुजी की इसी प्रकार सेवा किया करो। प्रभु जी चलो—

अरे वरुण, पवन, अग्नि, चन्द्र, सूर्य तुम अनादि काल से प्रभु जी की सेवा कर रहे हो, ऐसे ही सेवा किया करो। चलो प्रभुजी चलो, प्रभु जी चलो—वशिष्ठ जी, विश्वामित्र जी (कुछ ध्यान कर कर) प्रभुजी चलो—ब्रह्माजी प्रभु जी ब्रह्मा जी तो बड़े ही व्यस्त है इन पर तो सृष्टि का कार्य है, ये क्या आपका कार्य करेंगे, चलो यहां से, प्रभुजी चलो।

हमारे प्रभुजी का दरबार, श्री प्रभुजी का दरबार, हमारे श्री सद्गुरुदेव योग-योगेश्वर, सिद्धों के स्वामी गुरुओं के सद्गुरुदेव श्री चन्द्र-मोहन जी महाराज की जय, प्रभुजी आपकी, बारम्बार जय हो, जय हो, जय हो।

हमारे प्रभु जी अष्टांग योगके दाता, अष्टांग योग के दाता, अष्टांग योग के दाता, वाहरे-दाता, वाहरे प्रभु, जय गुरुदेव, हमारे श्री सद्गुरुदेव बड़े ही दयालु है, बड़े ही कृपालु है।"

तदनन्तर राम श्री प्रभुजी के दरबार में ही कहने लगा—"प्रभु जी कट गये, कट गये, कट गये प्रभुजी हम भी चलेंगे, प्रभुजी आपके साथ चलेंगे"; और ऐसा कहते हुए राम श्री प्रभुजी के साथ ही जाने को मचल गया।

अब राम की बाह्य स्थिति में पूर्ण कोश सुधार हो चुका था। इस ही बीच राम से हमने कुछ बातें जानने का प्रयास किया, और रामने उनका उत्तर दिया, जो निम्न प्रकार है:—
"राम अब तुम स्वस्थ हो—जी हाँ

राम गर्मी लगती है—कुछ नहीं
राम सर्दी लगती है—कुछ नहीं

राम भूख लगी है—कुछ नहीं
राम प्यास लगी है—कुछ नहीं

राम हाथ, पैर या और किसी स्थान पर दर्द होता है—कुछ नहीं।" राम सहसा ही कहने लगा—

"अरे जरा सा और उचका दे, अरे यार थोड़ा और उचका दे। अहा, कैसा सुन्दर प्रकाश है, कितना तेज है, प्रभुजी का तेज है, प्रभुजी के सिवाय और किसका हो सकता है, प्रभुजी का ही तेज है।"

'आज प्रभु जी ने किसी पर बड़ी विलक्षण कृपा की है। उस कमरे में जाकर देखो- उस कमरे में—अहा प्रभु जी का प्रकाश कैसा सुन्दर है।'

प्रत्येक आधे आधे मिनट के बाद वह इन्हीं वाक्यों के साथ प्रभुजी के प्रकाश की सराहना कर रहा था एवं निर्मल उसका मुख-मण्डल नवजात शिशु की तरह ही भोला दृष्टिगोचर हो रहा था, मुख पर विलक्षण मुस्कान थी। लालटेन के मन्द-मन्द प्रकाश में उसके मुख पर विलक्षण तेज की आभा से युक्त कान्ति थी। हमारे दो प्रश्नों की प्रत्युत्तर में वाक्य कहे— राम प्रभुजी कहाँ है ? कुछ नहीं देख रहा हूँ। प्रभु जी का प्रकाश, कैसा सुन्दर है कितना तेज है।

राम तुम कहाँ हो ? कुछ नहीं देख रहा हूँ प्रकाश, प्रकाश, प्रकाश, प्रभुजी के सिवाय और किसका हो सकता है। कैसा तेज है, कितना तीव्र एवं आनन्ददायक प्रकाश है।

रात्रि के लगभग २ बजे से प्रातः ९ बजे तक उपर्युक्त वाक्यों की पुनरावृत्ति करते हुए एवं मुस्कराते हुए श्री सद्गुरुदेव जी के अखण्ड मण्डलाकार तेज की सराहना करता रहा और प्रभुजी के तेज में लीन रहा।

लगभग ९-२० बजे राम ने कहा—"आज २० तारीख हो गई। उसकी भक्तिका यथावत् श्री चरण-कमलों की कृपा से चल रही थी। नेत्र अर्धोन्मीलित थे। रात्रि की बात का उसे तनिक भी बोध न था। वह कह रहा था— "आज स्वप्न में हमको प्रभुजी के मन्दिर के दर्शन हुए थे और प्रभुजी के दर्शन हुए थे। प्रभुजी ने हमारे पैरों में कुछ लाल-लाल और हाथों में कुछ पीला-पीला लगा दिया है।'

उसे अपने ओठ के पास कुछ उठा सा प्रतीत हुआ, कहने लगा—माताजी जरा देखना यह क्या है, इसे साफ कर देना। तब माता जी ने बताया कि—'राम ! रात्रि को तुमने अपने ओठ काट डाले थे, जिसके कारण ये घाव हो गये हैं और ओठ सूज गये हैं।' राम ने कहा—'हैं, हमने ओठ काट लिये, हमने तो कुछ भी नहीं किया, मैंने तो केवल श्री प्रभुजी द्वारा दिये गये तेज के प्रसाद का सेवन किया था, जो अत्यन्त स्वादिष्ट था। मैंने ओठ काटे ही नहीं।' हमने पूछा—राम ! इसमें दर्द नहीं

होगा, तब राम ने कहा—'बिल्कुल नहीं।'

कुछ ही देर में माताजी उनके लिए चाय लायीं वह तुरन्त कहने लगा—'अरे, तुम तो कैसी हो, जब मैं श्री प्रभुजी के सामने बैठा था, तब तो तुमने चाय नहीं पिलाई अब तुम चाय लेकर आयी हो, जब मैं लेट रहा हूँ। अच्छा, तो पिला दो।' इस समय रामदत्त स्वतः के वाह्यज्ञान से अनभिज्ञ था। दोपहर के बाद लगभग १२ बजे से ही पुनः उनके नेत्र अर्धोन्मीलित थे, पुनः भक्तिका चलने लगी, और वह श्री चरण-कमलों में लीन हो गया। दोपहर से साय ७ बजे तक केवल निम्न शब्द ही सुनायी दिये 'वाहरे प्रभु, वाहरे दाता, त्रिशूल वाले, जय गुरुदेव।' सायंकाल ५-२५ बजे सहसा ही माताजी ने उनके समीप आकर यह इच्छा प्रकट की 'राम, अब तुम इस कटाबु वाले जीर्ण शरीर का क्या करोगे, अब तो तुम श्री प्रभुजी के दिव्य स्वरूप में लीन हो जाओ।' इसके तुरन्त बाद ही राम के मुखार-विन्द से निकला 'आरती, आरती, आरती', और इसके उपरान्त लगभग १०-१२ मिनट में 'जय गुरुदेव' की ध्वनि के साथ श्री प्रभुजी ने रामदत्त शर्मा को अपने चिन्मय प्रकाश स्वरूप में सदैव के लिये लीन कर लिया, और इस पंच भौतिक शरीर को त्याग कर उसे महामुक्ति प्रदान की।

इस समय उसकी अवस्था बिल्कुल शान्त थी। प्रभुजी का स्वरूप हमको रक्तिम वर्ण में विलक्षण तेज से देदीप्यमान दृष्टिगोचर हो रहा था। इसी समय हमारे पिताजी कहने लगे—'देखो हम सभी को श्री सद्गुरुदेव जी के आश्रम सभाई में कहे गये निम्न वचन ध्यान में रखने चाहिए कि 'ऐसे समय में पारि-वारिक सदस्यों का करुण विलाप करते हुए जीव को प्रभु के द्वारा प्रदत्त उसकी दिव्य गति को अवरुद्ध कर सकता है और जीवको कष्ट भी पहुँचा सकता है।' अतएव हम सभी मन्त्र का जप एवं श्री सद्गुरुदेव जी के गुणानुवादों का स्मरण करें, हम अपनी ओर से अपने निकृष्ट स्वार्थ के वशीभूत होकर रामदत्त की आत्मा को जो कि श्री चरण-कमलों के तेज में लीन है कष्ट नहीं देना चाहते हैं। हम अपनी ओर से किसी अन्यको भोर होनेके उपरान्त ही सूचना देंगे, नहीं तो हमारे और राम के उस आनन्द में विघ्न ही पड़ सकता है।' हम सभी ने यही उचित समझकर मन्त्र जप एवं श्री सद्गुरुदेव जी की विलक्षण कृपाओं के स्मरण को ही उस समय का विषय बना लिया।

हमारी छोटी बहिन सात वर्षीय कृष्णा भी रात्रि भर जगती रही, उसे भी भय अथवा दुःख का बोध नहीं हुआ। हमारी माताजी भी

शान्त चित्त होकर श्री चरण-कमलों का चिन्तन करती रहीं। पिताजी और हम दोनों भाई भी मन्त्र का जप ही करते रहे थे।

लगभग ४-३० बजे माता जी ने अनुभव किया कि—प्रभु जी के स्वरूप से तेज-पुञ्ज निकला, उसमें से एक देव पुरुष ने, जिनके हाथ में एक थाल था जिसमें जलते दीपक जल रहे थे, उन्हें रामदत्त की मृत देह के चारों ओर पंक्तिबद्ध कर रख दिया, उसी समय वहाँ बिछे हुए कम्बल से गुलाब के पुष्पों की महक आई, तदनन्तर वह प्रकाश पुञ्ज अन्तर्धान हो गया। सहसा ही माताजी के मुख से निकल पड़ा—"राम! तुम्हारी दीपावली तो स्वयं श्री प्रभुजी ने मनादी।"

सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत होने के उपरान्त भी राम के मुखमण्डल का तेज ज्यों का त्यों था, चेहरा अत्यन्त भोला लगता था। २१ ता० को प्रातः ६ बजे सभी पड़ौस के व्यक्ति आ गये थे। सभी का विचार था कि मोतीझरा के रोगी को जल-क्रिया करना ही विधान है। यह जानते हुए भी हमारे पिताजी को अन्तःप्रेरणा हुई कि हम अग्नि-दाह क्रिया करें, तत्क्षण प्रभु जी के श्री चरणों की विलक्षण कृपा के फलस्वरूप सभी व्यक्ति कहने लगे—"नहीं, अग्नि-दाह ही मृतक शरीर के लिये सर्वोत्तम क्रिया है।" शीघ्र ही वैसी ही तैयारी की गई।

श्मशान भूमि में हमको जल के लिये एक मटकी की आवश्यकता पड़ी। सभी इस विचार में थे कि क्या किया जावे।' मैं उसी समय समीप के ही एक कुएँ की ओर बढ़ा, मार्ग में एक नई मटकी भूमि से ऊपर रखी देखी। श्री चरणों की कृपा को समझकर मैंने उसे उठा लिया। कुएँ पर अनुभव हुआ कि "श्री बहूर साहब कह रहे थे, देखो भाई साहब! हमारे प्रभुजी की विलक्षण कृपा देखो, आकाशमण्डल में सर्वोपरि दिव्य सिंहासन पर श्री सद्गुरुदेव जी विराजमान थे। अनेक वाद्य यन्त्रों की ध्वनि से नभ-मण्डल गूँज रहा था, समस्त देवताओं के साथ अनेक ऋषिगण वेदमन्त्रों का गायन करते हुए राम की मृत देह का अन्तिम संस्कार कर रहे थे। आनन्दकन्द, योग-योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से कह रहे थे—"ये सभी हमारे बालक अबोध हैं अतएव तुम शान्त करो।" हम सभी आनन्द-विभोर थे। वहाँ से वापिस आने पर भी प्रभु चरण-कमलों की विलक्षण कृपा ही हमको बार-बार स्मरण आती थी। बाद में माताजी ने बताया कि जब तुम वहाँ से आ रहे थे तो प्रभुजी की विलक्षण कृपा के फलस्वरूप हमारी अक्रिया चल रही थी, वे ही श्री चरण नेत्रों के सामने दृष्टिगोचर हो रहे थे, उन श्री चरणों की विलक्षण एवं अहैतुकी कृपा का प्रसंग ही ध्यान में बार-बार आता था। उस समय किये जा रहे किसी भी लौकिक रीति-रिवाज का हमको कोई बोध नहीं था। केवल

यही स्मरण होता था कि अबोध बालक राम को कृपासागर श्री सद्गुरुदेव जी ने कहा—"मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना"। हम सभी माता जी के इन वचनों को सुनकर आनन्द-विभोर थे।

२१ ता० को साप्ताहिक सत्संग का दिन था। मैं सायंकाल श्री बहुर बाबा के निवास स्थान पर अंतिम लौकिक रीति-रिवाज जानने हेतु गया। बाबा ने केवल श्री चरणों की आरती की एवं सत्संग कार्यक्रम का विसर्जन किया। मेरी दशा को अवलोकन कर बाबा आनन्द-विभोर हो उठे। सभी सत्संगी भाइयों के साथ बाबा मार्ग में श्री चरणों की कृपा का गुणगान करते हुए हमारे निवास पर आये। घर पर आकर बाबा ने हमारे पिताजी से कहा—'भाई राधेश्याम जी ईश्वर के विधान को कौन जान सकता है............।' उनका यह वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि पिताजी बीच में ही कहने लगे—'बाबा इस समाज में हम सभी गुरु-भाई उपस्थित हैं, व्यावहारिक दृष्टिकोण का दायरा यहाँ समाप्त हो जाता है अतएव यह हमारे लिए आनन्द-विभोर होने का विषय है कि केवल चौदह वर्षीय अबोध सांसारिक बालक राम पर रुग्ण अवस्था में मृत्यु शैय्या पर इन कृपासागर ने कैसी विलक्षण कृपा की है जो कि हम तुच्छ जीवों की कल्पना से परे है। और अब आगे की कृपा को आप भी सुनो—ऐसा कहते हुए समस्त घटित हुआ प्रसंग को पिताजी ने सभी को सुनाया। सभी भाई इन कृपासागर की विलक्षण कृपा पर मुग्ध थे। उस अपूर्व एवं अलौकिक आनन्दको किंचित भी लेखबद्ध करना मुझ बालक के लिये सामर्थ्य से सर्वथा परे है। श्री भगवान मिश्र जी ने कहा—"अरे भाई! मुझे ८० वर्ष होगये, आज तक न ऐसा पढ़ा न सुना जैसा कि मैं आज इन नेत्रों से श्री चरणों के दरबार में देख रहा हूँ कि—"माता-पिता अपने १४ वर्षीय बालक के देहावसान पर आनन्द-विभोर हो रहे हैं।" द्वापर और त्रेता युग के इतिहास को भी आज मैं परिवर्तित हुआ देख रहा हूँ। केवल भगवान राम के वनगमन मात्र से ही समस्त अयोध्या व्याकुल थी। पिता दशरथ स्वर्ग सिधार गये थे। भगवान श्रीकृष्ण ब्रज से मथुरा जाने के वियोग में सम्पूर्ण ब्रज के आबालवृद्ध नर-नारी अत्यन्त व्याकुल थे, लेकिन श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों की विलक्षण कृपा देखो कि यहां विपरीत ही अवस्था दृष्टिगोचर हो रही है।

श्री बहुर साहब ने कहा—"भाइयो! हमारे श्री प्रभुजी ने हमारे किशोर भाई राम को महायोग लहरी के अनुसार महामुक्ति प्रदान की है। आज हम यह विचार नहीं कर पा रहे हैं कि जिन्हें हम "योगीराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज" समझे बैठे हैं। वे हमारे श्री प्रभु अपने आप में उस तत्व को छिपाये बैठे हैं, जिसे वेद, शास्त्र, उपनिषद्, ऋषि-मुनि आदि चराचर जगत का कर्णधार बताते हैं, जिनका

अनाहत नाद

[श्री मानिकचन्द डमर वैश्य]

स्कन्द पुराण से —

संत समाज का एक बड़ा भारी भाग अनाहत नाद या अनहद नाद का उपासक है। कबीर, रैदास, नानक और राधास्वामी ने केवल अनहद-योग का प्रचार किया था। उक्त आचार्यों ने अपने-अपने अलग-अलग मत या सम्प्रदाय कायम किये और उनको अनहद नाद का साधन बतलाया।

विराट् में जितने मण्डल हैं उनमें से दस मण्डलों ने शब्द भी जारी किये हैं। इन मण्डलों में प्रत्येक मण्डल अपना एक शब्द रखता है। विराट् में कुल छत्तीस मण्डल हैं और वे सब अलग-अलग एक-एक शब्द रखते हैं। परन्तु केवल दस शब्द प्रकट रूप में चालू हैं और शेष छब्बीस मण्डलों के शब्द स्वर रूप से गुप्त खामोश में चालू रहते हैं। क्योंकि ३६ मण्डल अलग-अलग अपना रंग, रूप, शब्द और अधिकार रखते हैं। उन सब की जहां मात्राएँ अलग हैं, उनके बीच धानी जिस भी अलग-अलग है। प्रत्येक मण्डल से जो कुछ यहां आता है, वह स्वर या शब्द के रूप में ही होता है। इसराज नामक बाजे में जो ३६ तार होते हैं वे ३६ मन्जिल के स्मारक हैं और प्रत्येक ३६ प्रकार के अनाहद नाद के सूचक हैं। दस प्रकार का अनहद नाद कान से सुना जाता है। बाकी २६ प्रकार का अनहद जो स्वरूप है केवल अनुभव के कान से सुनायी पड़ता है। वे लोग यथार्थ नहीं जानते, जो अनहद को केवल

'अखण्ड मण्डलाकार तेज' समस्त सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। इस कलि-काल में वह जगन्नियन्ता श्री प्रभु ही हमारे सद्गुरुदेव के रूप हम जीवों के कल्याण हेतु हम पर अहेतुकी कृपा कर रहे हैं। हमारे श्री सद्गुरुदेव जी ने "कर्तु म् अकर्तु म् अन्यथा कर्तु म्" की ईश्वरीय सामर्थ्य को चरितार्थ किया। काल के ऊपर आधिपत्य करके राम को मृत्यु के बीभत्स जाल से मुक्त किया एवम् हमारे उस अबोध भाई राम को, जो कि जप, तप, ध्यान एवं सभी साधनों के ज्ञान से सर्वथा रहित था, बाल्यावस्था में मृत्यु-शैया पर उस परमगति 'महामुक्ति' को प्रदान किया जिसके लिए ऋषि-मुनि कई-कई युगों तक हिमालय में घोर तप करते रहते हैं तथा हम सभी को अपूर्व एवं अलौकिक आनन्द एवं धैर्य को प्रदान किया है। यह श्री चरणों की विलक्षण कृपा ही है। आज हमारी मति कुन्द हो जाती है कि हम अज्ञानी सांसारिक प्राणी इसके साथ कैसा व्यवहार करें। ××

दस ही प्रकार का जानते या मानते हैं। कारण यह कि जो दस मण्डल अर्द्धमात्रा के नीचे अर्द्धचन्द्राकार घेरे में आबाद हैं, वहीं से प्रकट शब्द हुआ करता है और अनाहद नाद के जितने प्रचारक संसार में आये, वे सब उन मण्डलों के ही निवासी ही थे। अखण्ड अर्द्ध-मात्रा से लेकर पूर्ण मात्रा तक जितनी मंजिलें हैं या जितने मण्डल हैं, उनके लिंग या कारण शरीर इस मायिक भूमिका पर नहीं आये। इसीलिये उनके मण्डलों का स्वर लोगों को सुनाई नहीं पड़ा। हाँ, परमात्मा कल्कि महाराज जैसे सब इस भूमि पर अवतार लेंगे। उसी समय ३६ तार वाला यमराज बजेगा। तब तक दस तार वाली सारंगी बजाते रहियेगा।

अनहद से लाभ

१—अगर मरते समय किसी नादको पकड़ लिया जाय तो मृतक की आत्मा उसी मण्डल में जा पहुँचेगी, जहाँ से वह शब्द आ रहा है।

२—नाद के पथिक को यमदूत नहीं पकड़ सकते, क्योंकि वे मण्डल यमलोक से बहुत ऊँचे हैं।

३—नाद के अभ्यासी की बुद्धि विकसित होती रहती है। उसकी समझ में सत्य का प्रकाश आने लगता है।

४—नाद के अभ्यासी को एकदम किसी न किसी स्वर्ग के मण्डल में स्थान मिल जाता है। जिस तार को पकड़कर वह चलेगा, उसी तार की सरकार में वह जा पहुँचेगा, परन्तु पाप-पुण्य के चक्र से वह भी सुरक्षित नहीं। जब उसका पुण्य समाप्त होगा, वह फिर अपने पाप भोगने के लिये इसी भूमिपर उतार दिया जायेगा।

५—नाद के अभ्यासी पर कामादि पाँचों शैतानी तत्व अपना प्रभाव कम डाल सकते हैं।

अनहद-नाद

मंडल का नाम	स्वर है	उसकी उपमा या शब्द
१—संहारक देवता लोक	,,	पाञ्चजन्य की झंकार-सी
२—पालक देव का लोक	,,	सागर की लहर-सी
३—सृजक देव का लोक	,,	मृदङ्ग-सी
४—सहस्र दल कमल	,,	शङ्ख-सी
५—आनन्द मण्डल	,,	तुरही-सी
६—चिदानन्द मण्डल	,,	मुरली-सी
७—सच्चिदानन्द मण्डल	,,	बीन-सी
८—अखण्ड अर्द्धमात्रा	,,	सिंह गर्जन-सी
९—अगम मण्डल	,,	नफीरी-सी
१०—अलख मण्डल	,,	बुलबुल-सी

उपर्युक्त दस मण्डल अपरा के इलाके में हैं और शेष २६ मण्डल परा के इलाके में हैं।

नाद का अभ्यास

प्रातःकाल शौचादि से छुट्टी पाकर किसी एकान्त स्थान पर चले जाओ। सब आसन लगाओ यानी सीधे बैठ जाओ। एकाग्र मन करके हाथ के दोनों अंगूठों से दोनों कान बन्द करो। अपने ही घट में शब्द सुनने का प्रयत्न करो। अभ्यास करते-करते शब्द सुनाई पड़ना शुरू हो जायगा। अपनी दायीं ओर से शब्दों को सुनना चाहिये। बायीं ओर के शब्द माया के हैं और साधक को त्याज्य हैं।

[साधनाङ्क से]

श्रीमद्भागवत में योग-प्रकरण

[श्री डा० विजयसिंह]

[श्रीमद्भागवत महापुराण में योग सम्बन्धी विवरण को लेखक ने सिद्धयोग के पाठकों को अपने लेख में स्पष्ट करने का सद्प्रयास किया है। —सं० सम्पादक]

श्रीमद्भागवत का पुराणों के अन्तर्गत एक विशेष स्थान है। भगवान् वेदव्यास द्वारा रचित यह विशिष्ट ग्रन्थ जहां ऐतिहासिक तथ्यों से भरा पड़ा है, वहीं भगवान योग-योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र के मंगलमय पावन योग-चरित्रों तथा स्वयं उनके श्रीमुख से निःसृत योगका उपदेश जो उद्धव को दिया गया है, बड़े ही सुन्दर रूप से अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत भक्ति-योग एवं ज्ञान-योग का विश्लेषण इस महापुराण में किया गया है। प्रायः परोक्ष-अपरोक्ष ढङ्ग से कई कथानकों में योग की महत्ता को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। उदाहरणार्थ, ग्रन्थ के चतुर्थ स्कन्ध में सतीके शरीर-दाहकी कथा वर्णित है। सतीजी ने अपने पिता दक्ष प्रजापति द्वारा भगवान् शंकर के निरादर किये जाने की घटना से शोकान्वित होकर अपने को योगाग्नि में भस्म कर लिया था। देखें—

इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन्,
क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक्।
स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता,
निमील्य दृग्योगपथं समाविशत्॥
कृत्वा समानावनिलौ जितासना,
सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः।
शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं
कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दितानयत्॥
एवं स्वदेहं महता महीयसा,
मुहुः समारोपितमङ्कमादरात्।
जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी,
दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम्॥
ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं,
जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्।
ददर्श देहो हतकल्मषः सती।
सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥

अर्थात्—देवी सती मौन होकर उत्तर दिशा में भूमि पर बैठ गयीं। उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ़ लिया तथा नेत्र बन्द कर शरीर-त्याग हेतु योग मार्ग में स्थित हो गयीं। उन्होंने आसन को स्थिर कर प्राणायाम द्वारा प्राण और अपानको एकत्र करके नाभि चक्रमें स्थित किया, फिर उदानवायु को नाभि चक्र से ऊपर उठाकर धीरे-धीरे बुद्धि के साथ हृदय में स्थापित किया। इसके पश्चात् अनि-

न्धिता सती उस हृदय स्थित वायु को कण्ठ-मार्ग से भृकुटियों के बीच में ले गयी। इस प्रकार, जिस शरीर को भगवान शंकर ने कई बार बड़े आदर से अपनी गोद में बैठाया था, उस पर कोपित होकर सती ने अपने सम्पूर्ण अंगों में वायु और अग्नि की धारणा की। अपने पति जगद्गुरु भगवान शंकर के चरण-कमल मकरन्द का चिन्तन करते-करते सती ने और सब ध्यान भुला दी। उन्हें उन चरणों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न दिया। इस तरह वे सर्वथा निर्दोष, अर्थात् मैं दक्षकन्या हूँ—ऐसे अभिमान से भी मुक्त हो गयीं और उनका शरीर तुरन्त ही योगाग्नि से जल उठा। इसी प्रकार भीष्म का देह त्याग योग की क्रियाओं का समर्थन करता है। जब देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि से उनकी हड्डियों का वज्र बनाने के निमित्त मांग लेने पर ऋषि ने अपने इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धि का नियमन कर परम योग का आश्रय लिया इससे उनका शरीर पात कब हो गया इसका उन्हें पता भी नहीं लगा। इस ग्रन्थ के चौथे स्कन्ध में ध्रुव को यथार्थतः अष्टांग योग की ही दीक्षा प्रदान की थी। यथा—

स्नात्वानुसवनं तस्मिन्,
कालिन्द्याः सलिले शिवे।
कृत्वो चितानि निवसन्ना-
त्मनः कल्पितासनः ॥४३॥

प्राणायामेन त्रिवृता,
प्राणेन्द्रिय मनोमलम्।
शनैर्व्युदस्याभिध्याये-
न्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

अर्थात् नारद जी ने ध्रुव को आसन लगा कर प्राणायाम के द्वारा प्राण, इन्द्रिय तथा मन के मल को दूर कर समाहित चित्त से भगवान का ध्यान करने का उपदेश दिया है।

अहो! स्वयं भगवान पूर्णावतार योग-योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र के अलौकिक योग-ऐश्वर्य का भला कौन वर्णन कर सकता है। परन्तु इस ग्रन्थ में बारम्बार उन्हें योगी तथा योगियों में श्रेष्ठ योगेश्वरेश्वर बतलाया गया है। इन्होंने स्वयं योग का आश्रय लेकर अत्यन्त अद्भुत, अलौकिक लीलाएँ कीं। जिनकी योग लीला से भ्रमित हो जगत स्रष्टा श्री ब्रह्मा जी स्वयं मोहित हो उठे। श्रीकृष्णचन्द्र जी की कायव्यूह रचना इस घटना तथा रास-लीला में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। ग्वालबालों को दावाग्नि एवं विष के प्रबल प्रभाव से रक्षा करना तथा अन्यान्य चरित्र योग वीर्य एवं योग शक्ति का परिचायक है। श्री व्यास जी ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन चरित्र को आदि से अन्त तक योग सिद्धियों से परिपूर्ण वर्णित किया है।

इस प्रकार के सम्पूर्ण योग प्रासंगिक कथाओं का यहाँ निरूपण करना सागर को

गागर में भर लेने जैसा असम्भव कार्य होगा। अतः अब संक्षेप में प्रमाणरूप से श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत जहाँ-जहाँ योग सिद्धान्तों का स्पष्ट वर्णन हुआ है, उन सभी सन्निभागों का वर्णन करना समीचीन होगा। प्रमुखतः दूसरे तीसरे एवं एकादश स्कन्ध में यथाक्रम ध्यान-योग, ज्ञान-योग, भक्ति-योग के साथ अष्टांग-योग का वर्णन किया गया है। योग के बहुचर्चित आठ अंग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। परन्तु भगवान् पतंजलि ने यम नियम के केवल पांच भेद बतलाये हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत में इनके प्रत्येक बारह-बारह विभाग किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

यम—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) असंग (५) ह्री (६) असंचय (७) आस्तिकता (८) ब्रह्मचर्य (९) मौन (१०) स्थैर्य (११) क्षमा (१२) अभय।

नियम—(१) शौच-बाह्य (२) आभ्यन्तर (३) जप (४) तप (५) होम (६) श्रद्धा (७) आतिथ्य (८) भगवदर्चन (९) तीर्थाटन (१०) परार्थचेष्टा (११) सन्तोष (१२) आचार्य सेवन।

आसन—श्रीमद्भागवत में साधक को ध्यान परायण होने के पूर्व आसन जय करने की बात कही गई है।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य,
विजितासन आसनम्।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन,
ऋजुकायः समभ्यसेत ॥
(स्कन्ध पु० ३।२८।८)

अर्थात्—पवित्र देश में आसन लगाकर आसन को जीते। तत्पश्चात् स्वस्तिकासन लगाकर सीधा शरीर करके अभ्यास करे। कुछ लोगों ने स्वस्ति समासीन से पद्मासन अथवा सिद्धासन से सुखपूर्वक बैठे ऐसा अर्थ किया है।

प्राणायाम—श्रीमद्भागवत में पूरक, कुम्भक तथा रेचक के द्वारा प्राण के मार्ग को शुद्ध करने का आदेश दिया गया है—

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।

प्राणायाम के दो प्रकार अगर्भ तथा सगर्भ के बारे में भी श्रीमद्भागवत में वर्णन मिलता है :—

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं,
त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जितश्वासो,
ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥
(स्कन्ध पु० २।१।१७)

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं,
जितश्वासस्य योगिनः।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं,
ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥
(स्कन्ध पु० ३।२८।१०)

सगर्भ प्राणायाम करते हुए अ-उ-म् से घटित महाक्षर ओउम् (ॐकार) की मन में आवृत्ति करता जाय। ॐकार को बिना भुलाये अपने श्वास को जीते। जो योगी इस प्रकार सगर्भ प्राणायाम के अभ्यास से श्वास जय प्राप्त करता है उसके मन से रज तथा तम का नाश उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार आग में तपाये लोहे से मलिनता दूर हो जाती है। प्राणायाम तीनों काल में अर्थात् प्रातः, मध्याह्न तथा सायं करना चाहिये और हर बार दस प्राणायाम करना चाहिये। ऐसा करने वाला एक माह के अन्दर ही पवन को वश में कर लेता है—

दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्
जितानिलः।

(स्कन्ध पु० ११/४/३५)

प्रत्याहार—प्रत्याहार को बताते हुए श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि साधक को अपनी निश्चल बुद्धि की सहायता से अपनी इन्द्रियों को विषयों से खींचकर उन्हें एक स्थान पर रखने का यत्न करना चाहिये। देखें—

"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो
मनसाकृष्य तन्मयः।
बुद्ध्या सारथिना धीरः
प्रणयेन्मयि सर्वतः॥

धारणा

धारणा का अर्थ है मन को एक वस्तु में ठहरा देना। श्रीमद्भागवत में दो प्रकार की धारणा बताई गई है। (१) वैराज धारणा और (२) अन्तर्यामि धारणा।

भगवान के स्थूल रूप में जब धारणा की जाती है अर्थात् मूर्तरूप में मन को भावनाओं से लगाया जाता है तो इस प्रकार की धारणा को वैराज धारणा बताया गया है। जब साधक इसमें सफलीभूत हो जाये तो उसे अमूर्त रूप की धारणा करनी चाहिए। इसका गहन वर्णन श्रीमद्भागवत् के दूसरे स्कन्ध के दूसरे अध्याय, तीसरे स्कन्ध के अट्ठाईसवें अध्याय तथा ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में किया गया है।

ध्यान

जब किसी वस्तु विशेष में अनुकूल रूप से मन धारणा धारण करे, उसे ध्यान बताया गया है। श्रीमद्भागवत में भगवान श्रीहरि के चरण कमल का ध्यान करना बतलाया गया है। जो चरण कमल वज्र, अंकुश ध्वजा और कमल के चिन्हों से युक्त हैं और जिसने अपने ऊँचे उठे हुये लाल-लाल नखों की ज्योत्स्ना से भक्तों के हृदय के अन्धकार को दूर किया है।

समाधि

जिस समय भक्ति से द्रवीभूत हृदय, आनन्द से रोमांचित होकर, उत्कण्ठा से आँसुओं की धारा में नहाने वाला भगवान् का भक्त अपने चित्त को ध्येय पदार्थ से उसी भाँति अलग कर लेता है जिस प्रकार मछली के मारे जाने पर मछुआ काँटे को अलग कर देता है। उस समय निर्विषय मन अग्नि की तरह गुण प्रवाह से रहित होकर भगवान् में लय प्राप्त कर लेता है, इसे समाधि कहा गया है। ——

विनय-शतक

[श्री पं० सुखीराम सवानिया]

चाहता नहीं हूं नाथ ! मैंने जो कुकर्म किये,
उनके कुफल से तू मुझको उबार दे।
कामना नहीं है, कुछ स्वर्ग में विहार करूँ,
मुक्ति से भी मन को हटा के फटकार दे।
होता अपमान है तो, होने दे हजार बार,
सोई धर्म-भावना को कृपया उभार दे।
याचना यही है, कर-बद्ध करुणानिधान,
जैसे बने तैसे मेरी नीयत सुधार दे।
चाहता नहीं हूँ, मद-यौवन, कलत्र-पुत्र,
चाहता नहीं हूँ, धन-वैभव कमाने दे।
चाहता नहीं हूँ, राज-पाट, ऋद्धि-सिद्धियों को,
चाहता नहीं हूँ, भव्य भवन सुहाने दे।
चाहता न चिंतामणि-कल्पतरु-कामधेनु,
चाहता नहीं हूँ, सुख-कोष मनमाने दे।
करके कृपा की कोर, चाह जो बुझा दे नाथ !
चाहता यही हूँ, चाह चित्त में न आने दे।
जानता नहीं हूँ पाप, पुण्य, कर्माकर्म कुछ,
जानना जो चाहूं, ऐसी चाह को तू हरदे।
मानता यही हूँ, पात्र तेरे अभिनय का हूँ,
अब जहाँ चाहे, तू प्रभुवर मुझे करदे।

जीवन में त्रुटियाँ हुई हैं, होंगी अति और,
उनको समय पर शोधने का वर दे ।
जैसा नाच मुझको नचावे तू दयानिधान !
वैसा काल काटने का साहस भी भर दे ।

तेरी प्रेरणा से तुझे इष्ट है वही तो देव !
करता हूँ, फिर दीन हो क्यों दुख पाता हूँ ?
होती धर्म पालने में कष्ट की क्यों अनुभूति,
क्यों अधर्म ही में रुचि सौ गुनी लगाता हूँ ?
स्वत्व अपने से क्यों न तोष मिलता है मुझे,
दूसरों की देख कुढ़ता हूँ, जल जाता हूँ ?
इष्ट यदि मेरा दूसरों को भी अभीष्ट हो तो,
नाथ ! द्वेष-वह्नि से क्यों हृदय जलाता हूँ ?

एक-एक श्वास पर हो रहा हजार भार,
तो भी मरने के नाम ही से काँप जाता हूँ ।
पल-पल चालबाजियों के संग लाख-लाख,
इनसे बचने में न चूके भी रह पाता हूँ ।
चाहता हूँ मान, अपमान मिलता है किन्तु,
मान उसे मान, भर शान इठलाता हूँ ।
प्रभो ! मैं प्रणत हूँ, तू अति ही असाध्य इस-
व्याधि से बचा ले बार-बार बलि जाता हूँ ।

मानव जीवन का परम उद्देश्य

[डा० अभिराम शर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

[डा० अभिराम शर्मा ने अपने इस लेखमें मानव जीवनके परम उद्देश्य की व्याख्या करते हुए उसकी प्राप्ति के सहज उपायों का उल्लेख किया है। आशा है साधक पाठक इसकी उपयोगिता स्वीकार करेंगे। —सं० सम्पादक]

इससे पूर्व अगस्त अक्टू तथा जनवरी अङ्कों में छपे लेखों में मैंने यह समझाने का प्रयत्न किया था कि वास्तव में योग विज्ञान है क्या ? और उसका हमारे जीवन से क्या सम्बन्ध है ? वास्तविक सुख की प्राप्ति में इसका क्या योगदान है ? इस लेख में अपनी बुद्धि के अनुसार मैं इस विषय पर प्रकाश डालना चाहता हूँ कि कलियुगी अल्पायु प्राणियों के लिए ईश्वर प्राप्ति या आत्यन्तिक सुख प्राप्ति का कौन सा सरल साधन है ? यद्यपि सभी साधन शास्त्रों में अधिकारी भेद से उपयुक्त बताये गये हैं, यानी जिसकी भूमिका पूर्व जन्मों से जिस साधन के लिए बनी हुई है वही साधन उसके लिए उपयोगी है। कुछ लोगों का हृदय भक्ति प्रधान होता है, तो कुछ लोग कठिन तपस्या करने के लिए आतुर रहते हैं। कुछ लोग साधन चतुष्टय-सम्पन्न होकर ज्ञान की भूमिकाओं में निरन्तर प्रवेश करते जाते हैं और कुछ भाग्यशाली प्राणी पूर्ण सद्गुरु की कृपा पाकर योग की भूमिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं। किसी भी शास्त्रसम्मत साधन को सहज श्रद्धापूर्वक अपनाने पर निरन्तर अभ्यास से परम उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती है। इसी कारण योग-योगेश्वर कृष्ण ने पुष्टि की है कि—

> सांख्ययोगौ पृथग्बालाः,
> प्रवदन्ति न पण्डिताः।
> एकमप्यास्थितः सम्यगु-
> भयोर्विन्दते फलम्॥
>
> (गीता ५/४)

अर्थात् ज्ञान साधना तथा योग साधना का एक ही उद्देश्य है, उसको अबोध बालक ही भिन्न समझते हैं किन्तु ज्ञानी पण्डित लोगों की दृष्टि में दोनों एक ही है, क्योंकि किसी भी एक साधना की सिद्धि से दोनों साधनाओं के उद्देश्य की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। फिर भी—

> संन्यासस्तु महाबाहो,
> दुःखमाप्तुमयोगतः।
> योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म
> नचिरेणाधिगच्छति॥

अर्थात् योग का आश्रय लिये बिना संन्यास की स्थिति पा जाना असम्भव है, क्योंकि बाह्य वेष-भूषा धारण करना या सांसारिक सम्बन्धों को छोड़कर संन्यासी हो जाना तो सम्भव है किन्तु मन के अन्दर उठने वाले संकल्प-विकल्पों का संन्यास बहुत कठिन है। संन्यासी के वास्तविक स्वरूप का उपनिषदों में इस प्रकार वर्णित किया है कि—

संशान्त सर्वसंकल्पा या,
शिलावदवतिष्ठति।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा,
स्वरूपस्थिति परा॥

अर्थात् संन्यासी वह है जो सदैव अपनी स्वरूपावस्था में निमग्न रहता है, जिसमें उसकी स्थिति शिला की भाँति निश्चेष्ट रहती है, उसके मन में किसी प्रकार का संकल्पात्मक द्वन्द्व नहीं रहता और न वह जाग्रतावस्था, निद्रावस्था या स्वप्नावस्था के आवरण से प्रभावित होता है। ऐसी मन की स्थिति केवल योगी की ही हो सकती है, इसीलिये तो अर्जुन को शंका हो गई कि प्रभु मुझ जैसे के लिये श्रेष्ठतम् साधना क्या हो सकती है?

एवं सततयुक्ता ये,
भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं,
तेषां के योगवित्तमाः॥

(गीता १२-१)

अर्थात् हे प्रभो! इन लोगों में कौन योग-विज्ञान का ज्ञाता है जो निरन्तर प्रेमभक्ति का आश्रय लेकर तुम्हारे दिव्यस्वरूप की उपासना करते हैं तथा जो अनिर्वचनीय अक्षर ब्रह्म का चिन्तन करते हैं। यहां उपासना का अर्थ है मन का प्रभु के दिव्यस्वरूप में लीन हो जाना उनकी दिव्य-लीलायें सुनते-सुनते आनन्द-विभोर हो जाना, उनके स्मरणमात्र से अजस्र अश्रुधारा का प्रवाहित होते रहना, उनके दिव्यदर्शनों के लिये बेचैन रहना, उनकी झलक पाते ही संतुष्टि का अनुभव करना, यह सब उपासना यानी उनके समीप बैठ जाना, के लक्षण हैं। योगेश्वर कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के मन की बात समझकर उत्तर दिया कि—

मय्यावेश्य मनो ये मां,
नित्ययुक्ताः उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते,
मे युक्ततमाः मताः॥

(गीता १२-२)

हे अर्जुन! जिसने अपने मन को निरन्तर मेरी उपासना में लगा दिया है, जिसके मनकी वृत्ति मेरे स्वरूप को ध्येय बनाकर स्वयं ध्येया-कार हो गई है, जो स्वयं संयमी एवं युक्ताहार विहारी है, जिसके हृदयस्थल पर अपार श्रद्धा का सागर हिलोरें ले रहा है। बस मेरी दृष्टि में ऐसा उपासक ही परमश्रेष्ठ है और उसकी

साधना सबसे सरल तथा सर्वोत्कृष्ट साधना है, क्योंकि—

> ये तु सर्वाणि कर्माणि,
> मयि संन्यस्य मत्पराः।
> अनन्येनैव योगेन मां
> ध्यायन्त उपासते॥
> तेषामहं समुद्धर्ता
> मृत्युसंसारसागरात्।
> भवामि नचिरात्पार्थ
> मय्यावेशितचेतसाम्॥

जो प्राणी मुझको ही अपना परम ध्येय मानकर अपने जीवन के सब कार्यकलापों को मेरे अर्पण करते जाते हैं, मानो वह अपने कर्मों का एकमात्र फल मेरे में प्रेम को उत्पन्न ही मानते हों। जो मेरे स्वरूप में ही योग-समाधि का अभ्यास करते हैं, अर्थात् मेरे स्वरूप में प्रणिधान की साधना से समाधि की ओर जाने के प्रयास में लगे हुए हैं। ऐसे प्राणियों का इस भवसागर से उद्धार करने के लिये मैं बहुत शीघ्र ही प्रकट हो जाता हूँ, क्योंकि जब उनके हृदय में मेरे लिये प्रेमप्रवाह चलता रहता है तो मेरे हृदय में उनके लिये प्रेम क्यों न उमड़े, क्योंकि यह तो मेरी प्रतिज्ञा है कि—

> ये यथा मां प्रपद्यन्ते
> तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थात् जो प्राणी मेरा जिस-जिस भाव से भजन करते हैं, मैं भी उनका उन्हीं-उन्हीं भावों से भजन करता हूँ। अन्तर इतना ही है कि वह जीव माया के इन्द्रिय-जाल में बांधकर भजन करते हैं, अतएव उनका मन पूर्ण एकाग्रता में नहीं रह पाता, किन्तु मैं तो मायापाश से स्वच्छन्द हूँ। अतः पूर्ण एकाग्र मनसे उनका भजन करता हूँ जिसके प्रभाव से उनके सब भवबन्धन कट जाते हैं। भगवान पतंजलि जी से भी जब समाधि के साधनों में सरलतम साधना की बात पूछी गई तो उनके मुख से निकल पड़ा कि—

> वीतरागविषयं वा चित्तं ईश्वर-
> प्रणिधानात् वा।

अर्थात् पूर्ण योग समाधि प्राप्त करने का, दुर्बल-शक्तिहीन प्राणियों के लिए, एक सरल उपाय यह है कि वह या तो वीतरागी सर्वज्ञ सद्गुरुदेव की उपासना करें या ईश्वर को ही सब कुछ मानकर उसकी उपासना करें, तो उसकी कृपामात्र से, वह सिद्धयोगी बन सकता है। इसमें शंका करने की गुञ्जाइश भी नहीं है, क्योंकि योगेश्वर कृष्ण इसकी पुष्टि करते हैं कि—

> अपि चेत् सुदुराचारो,
> भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्यः,
> सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
> क्षिप्रं भवति धर्मात्मा,
> शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि,
न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

अर्थात् कोई महा दुराचारी भी अविचल श्रद्धा से मेरी उपासना करने लगता है तो तुम उसको पूर्ण दृढ़ निश्चयी विशुद्ध महात्मा ही मानो, क्योंकि वह शीघ्र ही मेरी कृपा से धर्मानुयायी होकर योगारूढ़ हो जाता है और परम शांति पा जाता है, वह अलौकिक, अनंत स्वात्मानन्द सुख को प्राप्त कर लेता है। मेरी तो यह स्पष्ट प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्त की कभी किसी भी स्थिति में अधोगति हो ही नहीं सकती। इसीलिए कलियुगी अल्पायु प्राणियों के लिए परम उद्देश्य प्राप्त करने का सरलतम साधन मार्ग है :

मय्येव मन आधत्स्व,
मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत-
ऊर्ध्वं न संशयः ॥

अथ चित्तं समाधातुं न,
शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो,
मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि,
मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि,
कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि,
कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं,
ततः कुरु यतात्मवान् ॥
(गीता १२/८-११)

अर्थात् हे अर्जुन शास्त्रों में तो परमपद प्राप्ति के अनेक साधन हैं, परन्तु तुम मुझे परमप्रिय हो, इसलिए तुझे मैं एक सुगम साधन बता रहा हूँ कि तू अपने मन को संसार की व्यर्थ उलझनों से मुक्तकर उसे मेरे स्वरूप चिन्तन में लगा दे, अपनी बुद्धि को क्षणभंगुर परिवर्तनशील संसार के व्यर्थ अन्वेषण से मुक्त कर मेरे ही तत्त्वान्वेषण में लगा दे। इसके परिणाम स्वरूप तू मेरे में प्रवेश हो जायगा और तू स्वतः मेरी मूल प्रकृति और मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप के समस्त रहस्यों को जान जायगा, तू आज तक जिस अक्षय सुख की खोज में भटक रहा था, वह तुझे सहज ही में मिल जायगा। यदि तू अपने मन को मेरे स्वरूप में समाहित करने में अपने को असमर्थ पाता है तो धैर्यपूर्वक मुझे पाने के लिए योग साधन कर जिससे तेरे मन में समाहित होने की योग्यता आ जाय। यदि तू अपने को योग साधन करने में भी असमर्थ पाता है तो मेरी प्रसन्नता के लिए कर्म करने में लग जा, यानी तप और स्वाध्याय के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर। इसके परिणाम-स्वरूप भी अन्ततः सिद्धि को प्राप्त हो जायगा।

और यदि तप और स्वाध्याय करने में भी असमर्थ है तो जो भी कर्म तुझसे बने वही कर, किन्तु उसके फल की इच्छा छोड़ दे। इस प्रकार तू भी कर्म-बन्धन से मुक्त होता जायगा और शनैः-शनैः तेरा सांसारिक मोह-जाल तथा रागद्वेषजनित क्लेश क्षीण होता जायगा।

हे मन! तू अपने करुणेश्वर योगेश्वर कृष्ण महाप्रभु श्री सद्गुरुदेव की इस अमर वाणी को, उनके इस करुणामय सुगम साधन को, अपनाने में क्यों देर कर रहा है, क्यों नहीं अपने को उन करुणेश पर न्यौछावर कर देता, क्यों नहीं निष्कपट होकर उनसे कहता कि मैं अब आपके चरणों में आना चाहता हूँ, क्यों नहीं उनकी याद में निकलने वाली अश्रु-धारा से अपने अन्तःकरण को धोकर अपने जीवन को दिव्य योग से अलंकृत कर लेता? तू चोर है तो अपनी चोरी की करतूतें ही उनसे कह दिया कर, किन्तु उनसे दूर-दूर रह कर अपना मुँह छिपाकर प्रमाद की गोद में कब तक सोता रहेगा, अब जीवन का अधिक समय शेष नहीं है। अतः अन्तिम भूल की क्षमायाचना तो उनके सम्मुख जाकर कर ले, बस फिर—

सम्मुख होहि जीव मोहि जबहीं,
कोटिक जन्म अघ नासहिं तबहीं।

वह तो इतने दयालु हैं कि सम्मुख आते ही तुझे क्षमा कर देंगे और तेरे करोड़ों जन्मों के पाप-समूह को अपनी योग-शक्ति से भस्म कर देंगे।

भगवान पतंजलि ने योगसिद्धि के लिये दो प्रकार के अधिकारियों का संकेत किया है कि—

भवप्रत्ययः विदेहप्रकृतिलयानाम्
श्रद्धावीर्यस्मृतिप्रज्ञापूर्वकमितरेषाम्।

(पतंजलियोग)

अर्थात् कुछ जीव तो ऐसे होते हैं जो पूर्व जन्मों से उच्च योग साधन करते आ रहे हैं, जिनके मन की स्थिति विदेहावस्था तथा प्रकृति लयता तक पहुँच चुकी होती है, किन्तु अन्तिम समय तक योगसिद्धि पाने में असमर्थ रहे हैं। उन प्राणियों को जन्म लेते ही योग समाधि प्राप्त हो जाती है, किन्तु दूसरों को योग समाधि प्राप्त करने के लिये श्रद्धा, ब्रह्मचर्य तथा ध्यान की परिपक्व स्थितियाँ एवं सूक्ष्म बुद्धि जैसी दृढ़ भूमिका की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अधिकारी प्राणायाम करके हठयोग की सिद्धि द्वारा अपने स्वात्मानन्दरूप परम उद्देश्य को प्राप्त करते हैं या अष्टांग योग की साधनाओं से मनोजय करके राजयोग की सिद्धि द्वारा अपना परम उद्देश्य प्राप्त कर जाते हैं। यह दोनों ही साधन योग के मार्ग हैं। स्पष्ट है कि साधन योग के द्वारा पूर्ण विशुद्ध अन्तःकरण वाला शुद्ध सात्विकी, धर्मनिष्ठ एवं साधनचतुष्टयसम्पन्न मनुष्य ही साधनारत होकर अपने मानव जीवन के परम

लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, किन्तु कलियुग में ऐसे उच्च अधिकारी दृष्टिगोचर ही नहीं होते। कलियुगी प्राणियों के लिये तो हमारे प्रभुजी ने एक सुगम मार्ग दिया है, जिसे सिद्धयोग का मार्ग कहते हैं। अतः सिद्धयोग के पाठकों को इस लेख में उसी सिद्ध मार्ग की तात्त्विक रूपरेखा दे दी गई है, जो चतुर पाठक हैं, वे उसका अवश्य लाभ उठायेंगे और प्रमाद की गोद से उठकर प्रभु जी की पीयूष-वर्षिणी अमर छत्रछाया में प्रवेश कर जायेंगे, जीवन के परम लक्ष्य को सुगमता से पा जायेंगे। अस्तु, अगले लेख में साधन योग क्या है? इस पर विचार करेंगे।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं, तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।

सरल उपाय–संयम

[श्री गोविन्द जी शास्त्री]

सत्य यह है कि मनुष्य सम्पत्ति और ज्ञान के अहङ्कार से ग्रसित होकर पथभ्रष्ट हो गया है। इसलिये वह बाहुल्य से भयभीत एवं वैभव से त्रस्त है। इसके विपरीत यदि उसके अन्दर अहं का यह विस्तार न होता। यह सब कुछ भगवान को मान लेता, जो कुछ हो रहा है उसे भगवान की कृपा समझ लेता तो निश्चय ही दुःखी न होता। उसकी यह धारणा वस्तुओं की न्यूनाधिकता मानवकृत है, उस पर नियन्त्रण कर पाना मनुष्य के हाथ में है अथवा जनसंख्या में वृद्धि मनुष्य की इच्छा और क्रिया से हो रही है तथा इस पर नियन्त्रण किया जा सकता है अथवा बढ़ती जनसंख्या को भोजन देने का दायित्व समाजवादी पर है—अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है। वस्तुतः इन क्रियाकलापों की जड़ तो प्रकृति है। मानव को इस तरह का विकास और विस्तार की प्रेरणा भी वही देती है और यह संग्रह तथा अभाव भी उसी की अनिवार्य व्यवस्थायें हैं। मानव के पास तो इसका सरल उपाय संयम ही है।

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत्।

—कठोपनिषद्

अविद्याग्रस्त लोगो उठो, अज्ञान निद्रा से जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो।

× × × ×

प्रारब्धवादी सर्वदा संशय और आशङ्काओं से दुःखी रहता है, क्योंकि उसे स्वयं ही भगवान के विधान का कुछ पता नहीं रहता। किन्तु प्रभु को सब कुछ समर्पण करने वाला व्यक्ति सदा ही संशयों तथा आशङ्काओं से रहित तथा प्रसन्न रहता है भले ही परिस्थितियाँ उसके अनुकूल हों या प्रतिकूल।

कबीर की दृष्टि में—सद्गुरु

[श्री केशवदेव उपाध्याय]

अध्यात्म विद्या अथवा योग में मूलतः अनुभूतिगत तत्व का ही विचार किया जाता है। कबीर सच्चे योगी थे, अतः साधना के सभी पहलुओं से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने मुक्त कण्ठ से सद्गुरु तत्व की आराधना की है। वे जानते थे कि परमात्मा का ज्ञान तर्कों से नहीं होता है। अनुभूति का ज्ञान कैसे प्राप्त हो? इस प्रश्नका उत्तर कठोपनिषद में बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से मिलता है—

नः नरेणावरेण प्रोक्त एष,
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्य प्रोक्तेगतिरत्र नास्ति,
अणीयान्ह्य तर्क्यमणु प्रमाणात् ॥

अर्थात् आत्मा नीचः पुरुष द्वारा उपदिष्ट होने पर बोधगम्य नहीं हो सकती। अभेददर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये जाने पर आत्मा अस्तित्वादि का अनुभव होता है। वास्तव में अभेददर्शी गुरु ही ब्रह्मज्ञान देने का अधिकारी कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद में स्पष्ट लिखा है कि जिसको परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही गुरु में भक्ति है, वही सब कुछ जान लेता है।

यस्य देवे पराभक्तिः
तथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः,
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

विषम परिस्थितियों में उत्पन्न श्री कबीर के ऊपर स्पष्टतः हिन्दू धार्मिक ग्रन्थोंका प्रभाव था। वे जानते थे कि जब गुरु द्वारा मन्त्र दिया जाता है तो साधक के अन्दर सत्य की खोज की जिज्ञासा हो उठती है। इस अवस्था में साधक में विवेक का उदय होता है। इस विवेक द्वारा ही साधक सत्, असत् का भेद जानता है। कबीर स्वीकार करते हैं कि—

पीछे लागा जाय था,
लोक वेद के साथ।
आगे ते सद्गुरु मिला,
दीपक दीया हाथ ॥

× × × ×

ज्ञान प्रकाश गुरु मिल्या,
सो जनि बिसरी जाय।
जब गोविन्द कृपा करी,
तब मिलिया गुरु आय ॥

अर्थात् कबीर असत् संसार के पीछे जा रहे थे, किन्तु श्री सद्गुरुदेव ने कृपा की। सद्गुरु ने उन्हें ज्ञानरूपी दीपक प्रदान कर दिया, जिसके फलस्वरूप वे अध्यात्म पथ के पथिक हो सके। दूसरे पद में उन्होंने ईश्वर कृपा से सद्गुरु प्राप्त होने की बात मानी है। वे कहते हैं—गुरु ने मुझे ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान किया है, जिसे अब मैं कदापि नहीं भूल सकता। वे मायारूपी महाठगिनि के दांव-पेंचों के रहस्य को समझते थे, इसलिये वे कहते हैं कि कोई भी साधक गुरु की कृपा होने पर ही इस माया-जाल से बचकर निकलता है।

माया दीपक नर पतंग,
भ्रमि भ्रम इवै पडन्त।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते,
एक आध उबरन्त॥

ऐसी अवस्था में गुरु प्रदत्त ज्ञान से साधक की सारी भ्रांतियां दूर हो जाती हैं। यहां एक बात विचारणीय है, वह है शिष्य की पात्रता। श्रुतियों में साधक के पात्रत्व एवं अधिकार पर भी विशेष बल दिया गया है। ब्रह्मज्ञान का अधिकारी वही शिष्य माना जा सकता है जो पाप कर्मों से मुक्त हो तथा जिसका मन शान्त एवं स्थिर हो। मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि शिष्य को सत्यनिष्ठ, ब्रह्मचारी एवं तपस्वी होना चाहिये।

सत्येनलभ्यस्तपसा
ह्येष आत्मा।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण,
नित्यम्॥

इन्हीं भावों को कबीर दो टूक शब्दों में कहते हैं—

"सद्गुरु बपुरा क्या करे,
जो सिखि माही चूक।"

गुरु भक्त कबीर की वाणी गुरु की कृपाओं का स्मरण करके गद्-गद् होकर मुखरित हो उठी है।

रामनाम के पटतरे,
देवे को कछु नाहि।
क्या ले गुरु सन्तोषिये,
हौंस रही मन माहि॥

× × ×

बलिहारी गुरु आपणे,
द्यौं हाड़ी को बार।
जिन मानस ते देवता,
करत न लागी बार॥

अर्थात् कबीर गुरु के आजन्म ऋणी हैं। इसलिये कि गुरु की कृपा का प्रतिदान उन्हें संसार में दिखायी ही नहीं पड़ता है जिसको देकर वे अपने गुरु को सन्तुष्ट कर लें। वे अपने अस्थि-पञ्जर शरीर को भी गुरु को अर्पित करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

श्री कबीर की साधना पूर्णतः अन्तर्मुखी थी। उनका विश्वास था कि जब वृत्तियाँ पूर्णरूपेण मर जाती हैं, तब सहज समाधि प्राप्त होती है। इस अन्तर्मुखी साधना का ही उल्लेख कठोपनिषद् में इस प्रकार किया गया है—

पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयंभू,
तस्मात् पराङ् पश्यतिनान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मान मैक्ष-
दावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

अर्थात् स्वयं परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी करके हिंसित कर दिया है। इसी से जीव बाह्य विषयों को देखता है अन्तरात्मा को नहीं। किसने अमरत्व की इच्छा रखते हुए अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है, ऐसा कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख पाता है। इन्हीं भावों को श्री कबीर गुरु प्रेम में ओत-प्रोत हो कहते हैं—

कबीर मन मैदान में, न इन्द्रिय से यू जूझ।

लक्ष्य की महत्ता समझने वाला साधक ही उसे प्राप्त करने हेतु मृत्यु की भी अवहेलना कर सकता है। अध्यात्म जगत में प्रवेश करने वाला साधक, प्रारम्भिक अवस्था में गुरु शब्द का ठीक-ठीक अर्थ नहीं जानता, परन्तु ज्योंहि गुरु प्रदत्त शक्ति को पाकर अन्तर्जगत में प्रवेश करता है एवं साधना प्रगति को प्राप्त होता है त्यों-त्यों उसे श्री सद्गुरु तत्त्व का बोध होने लगता है। सद्गुरु में अकारण प्रेम होने का एक विशेष कारण श्री कबीर ने निम्न भावों (तथ्यों) का परिणाम माना है—

कुछ करनी, कुछ करमगति, कुछ पुरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दो सद् किया अलेख ॥

शास्त्रों का भी यही मत है कि साधनापथ की ओर बढ़ना एवं साथ ही परम लक्ष्यस्वरूप सद्गुरु प्राप्ति, साधक के पूर्व जन्मों के शुभ संस्कार तथा वर्तमान की उत्कट जिज्ञासा एवं साधन तत्परता के फलस्वरूप होता है, क्योंकि सत्व के अतिरेक से मनकी एकाग्रता, श्रद्धा तथा प्रेम का उदय हुआ करता है। कबीर ने कहा है कि—

"गुरु ने प्रेम का अंक पढ़ा दिया रे।"

इन्हीं बातों को जायसी ने अन्य ढङ्ग से कहा है—

"गुरु बिरह चिनगी जो मेला,
जो सुलगाई सो चेला।"

सिद्धयोग ग्रन्थों में सद्गुरु को ही ईश्वर तत्त्व कहा गया है। पातंजल योग दर्शन में समाधि प्राप्ति के हेतु एक विधि तो 'वीतराग विषयं वा चित्तम्' तथा दूसरी विधि 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' बताया गया है। ईश्वर मूलरूप से क्या है इसका सहज उत्तर, 'पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्' कहकर बताया गया है। अतः गुरु के साकार विग्रह में प्रीति होने पर, उपरोक्त दोनों बातें सहज ही सिद्ध हो जाती हैं। गुरु को उस विराट निर्गुण शक्ति का बड़ा ही अनोखा वर्णन श्री कबीर ने किया है—

"चाँद सुरुज औ नखत तराई,
तेहि डर अंतरिख फिरहिं सबाई।
पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा,
मारा तैस लोटि भुईं रहा ॥"

दूसरी ओर यद्यपि गुरु हरि दर्शन कराने वाले हैं तो भी श्री कबीर पहले गुरु पर ही बलिहारी हैं। देखें—

गुरु-गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेवकी, गोविन्द दियो लखाय ॥

होली के संदर्भ में लिखी एक रचना—

बावरे मन

[श्री 'दिव्य']

चेत चेत मन चेत बावरे, चढ़िया चली अमोली
रंग-रंग की रंगत रहा तू क्यों माथे पर रोली।
फागुन मास ब्रजनारी खेलें, तेरे आँगन होली,
चेत चेत मन चेत बावरे, जो होनी सो होनी।
रामायण गीता पोथों के, पाठ पढ़े बहुतेरे,
मनका फेरे मालाओं के, जप तप विधि घनेरे।
रटी ऋचायें मधुर किन्तु, सब थी होठों की बोली,
आडम्बरों में घुस कर तेरे, कोई मुक्ति न होली!
दुर्गुण और दुराचारों को, तू ने ओढ़ा चोली,
चेत चेत मन चेत बावरे, जो होनी सो होनी।
स्वार्थ सिन्धु में डूब डूब कर, खाता है क्यों झटके,
काम क्रोध मद लोभ मोह के, भर भर लाता मटके।
चल गंगा के तीर बावरे, है यह खारा पानी,
इससे प्यास बुझाने की, क्यों करता है नादानी।
रत्न-राशि को छोड़ि भर रहा, क्यों शंखों से झोली,
चेत चेत मन चेत बावरे, जो होनी सो होनी।
आदर्शों के गीत बहुत ही, तू ने जी भर गाये,
लेकिन उनके भाव चरित, कब अपने में अपनाये।
जीवन का जो लक्ष्य कहीं था, तू ने उसे भुलाया,
कथनी करनी दोनों ही में, तू न समन्वय लाया।
अहंकार की मदिरा पीकर, विषय भोग की गोली,
खाकर कुमति कामिनी की, घर ले आया तू डोली।
कलह-कलुष पल्ला ले गरजा, आठों याम ठठोली,
चेत चेत मन चेत बावरे, जो होनी सो होनी।
काया की कंचन नगरी में, ओ मन मेरे गीदड़,
राम कृषि की तू ने भरली, काली काली कीचड़।
राजहंस उड़ गये, आ गई है कागों की टोली,
चेत चेत मन चेत बावरे, जो होनी सो होनी।

श्री 'सिद्ध गुफा' योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा प्रकाशित

उपयोगी सत्साहित्य

	पुस्तक	मूल्य
१.	योगासन निबन्ध	२-००
२.	श्री योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की स्वहस्त-लिखित जीवन कथायें व सदुपदेश	५-००
३.	योगासन [सचित्र]	४-००
४.	श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	२-००
५.	योगिराज श्री मुलकराज जी	२-००
६.	आठ योगी	२-००
७.	समाधिस्था योगिनियाँ	२-००
८.	सर्वाई के चमत्कारिक चरित्र	२-००
९.	मन की एकाग्रता के साधन	१-००
१०.	भोग, रोग और योग	२-००
११.	जीवन-तत्त्व-साधन	१-००
१२.	यम-नियम	१-००
१३.	योग क्या ?	-२५
१४.	योगेश्वर-चरितमाला [भजन]	१-००
१५.	श्री महाप्रभुजी का गीत काव्य [कविता]	१-००
१६.	श्री सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	१-००
१७.	गुफा-संगीत	१-००
१८.	इन्दुशर्मा के आठ भजन	-५०
१९.	श्री सद्गुरु-स्तवन [गीतकाव्य]	१-००
२०.	योगामृत-भजनावली	-५०
२१.	जीवन तत्त्व साधन—व्याख्याकार—श्री गिरीशदेव शर्मा	५-००
२२.	सर्व समर्थ गुरुदेव	२-००
२३.	गुरु-गीता	१-००
२४.	Practices for Developing THE LIFE FORCE (Jiwan-Tattwa-Sadhan)	२,००

नोट—उपर्युक्त पुस्तकें मंगाने पर उक्त मूल्य के अतिरिक्त डाक व्यय मंगाने वाले के जिम्मे होगा।

इसके अतिरिक्त उक्त संस्थान से प्रकाशित योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक 'सिद्धयोग' मासिक के ग्राहक बनिये और लाभ उठाइये। नया वर्ष अप्रैल से प्रारम्भ होकर मार्च में समाप्त होता है। मूल्य १२ रु० वार्षिक।

मिलने का पता :—
व्यवस्थापक
श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सर्वाई (आगरा)

उपालम्भ

[श्री सत्येन्द्र यादव]

छू धूलि चरण युगलों की, बन जाता लोहा कंचन।
कहते हैं, कृपा तुम्हारी, भर देती शव में जीवन॥

सिकता-कण कर देते गिरि, गिरि कर देते सिकता-कण।
सुनता हूँ कर देते हो, क्षण भर में मरु को नन्दन॥

फिर हे! करुणानिधि बोलो! क्यों शुष्क रहा अन्तर्मन।
इस जलते तपते मन को, क्यों मिला न अनुकम्पा-घन॥

रीते नयनों से मैंने, अम्बर की डगर निहारी।
युग-युग तक रहा निरखता, पर मिली न झलक तुम्हारी॥

मंजुल दर्शन दे मेरा, क्यों किया न आलोकित मन।
तुम आये नहीं कभी प्रिय, बन कर मन में करुणाघन॥

जीवन भी कैसी छलना, सुख दुख की आँख मिचौनी।
मृग-जल के पीछे हैं मन, देखें आगे क्या होनी?

सागर में डूबी तरणी, उस माँझी का क्या होगा?
चिर लोहा धूलि बना जब, तब पारस का क्या होगा?

क्या पहुँच न पातीं तुम तक, यह मेरी करुण पुकारें।
यह तृषित विकल दृग कब तक, अम्बर की डगर निहारें॥

चपला सी चमक दिखाकर, काली नीरद माला में।
क्षण भर को आ जाना प्रभु! इस अन्तर शाला में॥

Sidhayoga Regd No. L. Ae. 008

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

ध्यान और ध्यान का अधिकारी

'ध्यै चिन्तायाम्' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन। भगवान का बारम्बार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा सा भी योगाभ्यास पाप का नाश कर देता है उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करने वाले पुरुष के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेप रहित चित्त से परमेश्वर का जो चिन्तन है उसी का नाम ध्यान है। बुद्धि के प्रवाह रूप ध्यान का जो आश्रय है उसी को साधु पुरुष ध्येय कहते हैं। स्वयं साम्ब सदा शिव ही वह ध्येय है। जो ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न हो सदा शान्त चित्त रहता हो जिसकी बुद्धि प्रसाद गुण और श्रद्धा से परिपूर्ण हो वही गुरुभक्त साधक ध्यान का अधिकारी होता है। ध्यान से सौख्य और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है, इसलिये मनुष्य को सब कुछ छोड़कर ध्यान में लग जाना चाहिए।

— शिव पुराण से

卐

वार्षिक मूल्य १५ रु० विशेषांक का २ रु० एक अंक का १.५०

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'विमल' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बर्राई थाना, राजामंडी, आगरा–२